सरहदों की कहानियाँ

सरहदों की कहानियाँ

अनुवाद एवं सम्पादन

देवी नागरानी

अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली

ISBN : 978-81-7408-776-8

अयन प्रकाशन
1/20, महरौली, नई दिल्ली – 110 030
दूरभाष : 2664 5812 / 9818988613
e-mail : ayanprakashan@rediffmail.com
website : www.ayanprakashan.com

•

मूल्य : 250.00 रुपये

SARHADON KI KAHANIYAN (Short Stories)
Translated by Devi Nangrani

Published with financial help of NCPSL

मुद्रक : विशाल कौशिक प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली–110093

'अनुवाद दो भाषाओं के बीच मैत्री का पुल है'

आज के इस दौर में गद्य में समकालीन कहानी प्रधानता पा रही है। वैसे देखा जाय तो कहानी न नयी होती है और न पुरानी। कहानी, कहानी होती है। वह या तो अच्छी लिखी हुई होती है, या अच्छी नहीं होती है। कभी लेखक के आस पास के संदर्भों पर निर्भर, या उस समय की अनुकूलता के ताने-बाने से बुनी हुई होती है, जिसमें कल्पना व यथार्थ का तालमेल होता है। कहानी कोई भी हो, साहित्य की रचनात्मक सशक्तता से ही महत्वपूर्ण बनती है।

आज की कहानी जीवन के बिलकुल निकट आ गई है। उसमें मानव के हृदय की धड़कन का अहसास होता है जिसमें शामिल हैं- हालातों की साज़िशी, मुफ़लिसी, बेरोज़गारी, अमानुषता, कहीं खुशहाली, कहीं बेबसी, बीमारी, दरिंदगी, उसूलों की बलि, हद सरहद पर फ़सादों के जंगल। प्यार नफ़रत की फ़स्ल से पनपती इन्सानियत व मज़हबी टकराव के बारे में पढ़कर आम आदमी अपने ही भाई-बंधुओं के दुख-सुख का परिचय पाता है। इसलिए कहानी का रूप भी गतिशील है, वह विस्तृत, विकसित एवं परिवर्तित होता रहता है।

भाषा के आविष्कार के बाद जब मनुष्य-समाज का विकास-विस्तार होता चला गया तब आदान-प्रदान की प्रक्रिया में भी फैलाव की आवश्यकता महसूस हुई होगी, तब ही तो अनुवाद का जन्म हुआ होगा। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अनुवाद अत्यंत महत्वपूर्ण व उपयोगी है। अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि राष्ट्रीय एकता व अस्मिता की प्रतीक हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी को भारत की सभी भाषाओं को साथ लेकर आगे बढ़ना है और सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधना है। कविवर बच्चन जी, जो स्वयं एक कुशल अनुवादक रहे, उनका कहना कि- 'अनुवाद दो भाषाओं के बीच मैत्री का पुल है। अनुवाद एक भाषा का दूसरी भाषा की ओर बढ़ाया गया मैत्री

का हाथ है। वह जितनी बार और जितनी दिशाओं में बढ़ाया जा सके, बढ़ाया जाना चाहिए।' प्राचीनकाल से लेकर अब तक अनुवाद ने कई मंज़िलें तय की हैं। यह सच है कि आधुनिक काल में अनुवाद को जो गति मिली है, वह अभूतपूर्व है। मगर, यह भी उतना ही सत्य है कि अनुवाद की आवश्यकता हर युग में, हर काल में तथा हर स्थान पर अनुभव की जाती रही है। यह अनुवादक ही है जो भौगोलिक सीमाओं को लांघकर भाषाओं के बीच सौहार्द, सौमनस्य एवं सद्भाव को स्थापित करता है। शायद यही एकमात्र सौहार्द भाषायी संगम में एकता के रंग भरने में पहल करे। डॉ. शिबन कृष्ण रैणा इस दिशा में अपना योगदान देते हुए लिखते हैं- 'अनुवाद-कर्म राष्ट्रसेवा का कर्म है। यह अनुवादक ही है जो दो संस्कृतियों, राज्यों, देशों एवं विचारधाराओं के बीच 'सेतु' का काम करता है।' अनुवाद हमें राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय भी बनाता है, यह कथन एक सत्य की शिला पर टिका हुआ सूरजमुखी है।

अनुवाद करते हुए मेरा प्रयास नये प्रयोगों से परिचित होता रहा है। सिन्ध की भाषा, कहीं परिष्कृत और कहीं अशिष्ट पाई जाती है। शब्दों का उपयोग वहाँ के परिवेश, परिस्थितियों से सामंजस्य रखता हुआ पाया जाता है। कहीं पर गावों की ख़ुशबू तो कहीं शहरी वातावरण में बाज़ारवाद की बू, कहीं अमीरी के चंगुल में छटपटाती ग़रीबी, कहीं सूदख़ोरों का दबाव, तो कहीं हालातों में फंसे लोगों के साथ हो रही सौदेबाज़ी माहौल में देखने को मिलती है। ऐसा नहीं कि यह कोई नई बात है, हमारे आस पास भी ये हालत मौजूद हैं, जिन्हें देख कर अनदेखा किया जा रहा है। अनेक व्यवस्थाएँ मौजूद हैं, कहीं ज़ाहिर, कहीं छुपी हुई। खुले आम दिन के उजालों में हो रही कुनीतियों में, न्याय अन्याय के पलड़ों में पिस रहा आदमी सूली पर लटका हुआ है, जहाँ उसकी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं ! इन्हीं संदर्भों को, इन्हीं अनकही बातों को, कहानीकारों ने कलम की धार से, किरदारों के ज़रिये, भाव, भाषा व शिल्प के आधार पर अभिव्यक्त करते हुए कहानी का स्वरूप दिया है। कलमकार का मन भी नदी के प्रवाह की मानिंद उन जी हुई परिस्थितियों, भोगी हुई पीड़ाओं का संदर्भ लेकर अपनी बात कहानी के रूप में सामने लाता है।

सिन्धी कहानी के वजूद में अज़ाब की दास्ताँ लम्बी है। विभाजन का दर्द नसों में लहू बनकर दौड़ रहा है। लेखकों की कहानियों में जो देश, काल और भाषा की सारी दूरियाँ हैं उन सब फ़ासलों को उलांघती आ रही है। शायद

भाषा भी खुली हवा में जीना चाहती है, आज़ादी का माहौल चाहती है, मन के वाद-विवाद की कैद तोड़ना चाहती है। भाषा का मज़हब से कोई संबंध नहीं, वह तो संगीत की तरह मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। उनका आपस में कोई मतभेद नहीं। मिली-जुली गंगा-जमुनी तहज़ीब अब सभी हदें पार करते हुए घुल-मिल रही है। सिन्ध और हिन्द के मक़बूल कहानीकारों की ये अछूती कहानियाँ उस परिवेश के वो सुमन हैं जिनकी अपनी एक अलग ख़ुशबू है। मैंने सिर्फ़ उन फूलों को चुनकर एक गुलदस्ता सजाया है जिसकी सुगन्ध सिन्धी कहानी की आंचलिक मधुरता के साथ हिन्द की फ़िज़ाओं में घुल-मिलकर अपनी एक अलग पहचान बना पाए। भाव और भाषा में संतुलित ताल-मेल बनाए रखने के सफ़र में मैं अनुभूति से अभिव्यक्ति तक पहुँचाने, इस जटिल जीवन की कशमकश में अपने प्रयास में कहाँ तक पूरी उतरी हूँ, यह मैं अपने प्रिय सुधी पाठकों से उनकी प्रतिक्रिया के रूप में पाने के इंतज़ार में रहूँगी।

अनुवाद की वैश्विक भूमिका पर अधिक चर्चा न करते हुए मैं सीमाओं और संभावनाओं के विस्तारपूर्ण प्रदान की पथिक बस एक सकारात्मक दिशा में सतत कोशिश कर रही हूँ, इस उम्मीद पर कि सिन्ध के सिन्धी कहानीकारों की कहानियाँ अनुवाद के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत के परिवेश की खुली हवाओं में अपनी ख़ुशबू बिखेर कर एक नई पहचान पा लें।

मैं अयन प्रकाशन की तहे दिल से शुक्रगुज़ार हूँ जो इस संग्रह के रूप में सिन्ध की दहलीज से सफ़र करती आ रही इन कहानियों को हिन्द के खुले वातावरण में मुक्त आसमान दिया। आपने समय की परिधि में इस संग्रह को मंज़रे-आम पर लाने की रवायत को बख़ूबी निभाया है। इस महायज्ञ में सिन्धी साहित्य के सारथी लेखकों का योगदान इस संग्रह में उनकी स्वीकृति के साथ शामिल है।

- देवी नागरानी

समर्पित

सिन्ध के उन अदीबों को–
जिनकी कहानियों से आज भी
वतन की ख़ुशबू हवाओं में घुलकर
मेरी साँसों को महका रही है।

'बादे-सहर वतन की चन्दन सी आ रही है
यादों के पालने में मुझको झुला रही है।'

– देवी नागरानी

सरहदों को तोड़ती कहानियाँ

देवी नागरानी द्वारा अनूदित कथा-संकलन अनुवाद के क्षेत्र में एक ताज़ा झोंके की तरह है। 'सरहदों की कहानियाँ' की रचनाएँ अनुवाद की आदर्श विधि सहजानुवाद के अधिक निकट पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त भी इस संकलन की कुछ विशेषताएँ हैं। ये कहानियाँ वस्तुत: सरहदों की कहानियाँ न होकर अनेक प्रकार से सरहदों को तोड़ती कहानियाँ हैं। देश, धर्म, भाषा, संस्कृति, किसी दीवार पर ये कथाएँ अटकती नहीं। मानव-मन, उसकी आकांक्षाएँ, समस्याएँ, उसकी सोच, उसकी प्रश्नाकुलता सार्वभौम है। फिर, अनुवाद का दामन थाम कर रचना पहले पहल भाषा की सरहद को ही तो तोड़ती है।

इस संकलन की दूसरी विशेषता है- कहानियों का चयन। देवी ने जिन कहानियों का चयन किया है वे किसी भी देश की वर्तमान कहानी हो सकती है। इन कहानियों की युनीवर्सेलिटी कहानीकारों तथा चयनकर्ता अनुवादिका की गहन दृष्टि व मानवीय प्रतिबद्धता को दर्शाती हैं। ये कहानियाँ कई स्तरों पर अनेक सरहदों को तोड़ती हैं।

बीमार आकांक्षाओं की खोज में बुद्ध भी सरहद पार कर जाते हैं; 'सच वो है जिसकी हमेशा तालश रही है, पर कभी मिला नही।' 'कोई टूटकर मुझे भी चाहे' की यूनीवर्सल चाह मुश्ताक़ अहमद शोरो की इस कहानी में मिलती है।

'दर्द की पगडंडी' लंदन की ज़मीन पर लिखी गई कहानी है जो किसी भी प्रवासी की, किसी भी देश में हो सकती है। वहाँ अपनों से मिलने की स्वाभाविक चाह है, पर कभी-कभी संस्कृति और इतिहास की सरहदें दिल के रास्ते रोक लेती हैं, जैसा कि सलीम के साथ होता है।

'गुफ़ा' कहानी सही अर्थों में वैश्विक कहानी कही जा सकती है। देश, भाषा, जाति की सरहदों को तोड़ती, मानव-मन को प्रस्तुत करती मनोवैज्ञानिक कहानी है जो विश्व के किसी भी कोने में संभव हो सकती है।

देवी नागरानी यद्यपि बड़ी उत्सुकता से, एक हिचक के साथ अनुवाद के इस बीहड़ में उतरी हैं; "ये अछूती कहानियाँ उस परिवेश के वो सुमन है जिनकी अपनी-अपनी ख़ुशबू है। मैंने सिर्फ़ उन फूलों को चुनकर एक गुलदस्ता सजाया है.... भाव और भाषा में संतुलिल ताल-मेल बनाए रखने के इस जटिल सफ़र में मैं अनुभूति से अभिव्यक्ति तक पहुँचने की कश्मकश में कहाँ तक अपने प्रयास में पूरी उतरी हूँ. ....।" (भूमिका) तो इसके उत्तर में देवी को दिलासा देने को जी चाहता है कि डॉ. भोलानाथ तिवारी ने जो अभिमत दिया है, 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है' की रौशनी में यदि इन कहानियों को परखा जाए तो देवी को हार्दिक बधाई दी जा सकती है और शुभकामनाएँ भी क्योंकि लक्ष्य भाषा में इन्होंने मूल भाषा की यथार्थता, शुद्धता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता तथा निरपेक्षता को साधे रखा है। इसके दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जिनमें संकलन की कहानियों के अनुवाद के स्तर को पहचाना जा सकता है।

'ख़्वाब का पानी की तरह बेनाम ज़ायका होता है। ख़्वाब का तो कोई रंग भी नहीं होता। ख़्वाब पानी की तरह पारदर्शी होता है, जिसकी सतह पर बेहिसाब ख़्वाहिशों की रौशनी जब भी अपनी उंगलियों से छूती है, तो ख़्वाब पानी में कितने ही अलग रूपों में उभरता है। ख़्वाब पानी जैसा ही कुछ है या कुछ सहरा में पानी के घूँट के लिए छलांग भरते हिरण की नाभि में छुपी ख़ुशबू की सुगंध है। (रिश्ता)

'हालाँकि वह अंधा है फिर भी देख सकता है कि कोठरी का दरवाज़ा कहाँ है और वह ऐसे दरवाज़ों पर खुलता है जो दुनिया की ओर खुलते हैं- वह दुनिया जो आज़ाद और रौशन है। वह रौशनी उसने कभी भी अपनी आँखों से नहीं देखी है पर उसने अपने पूरे वजूद से महसूस किया है।' (एक गुनाह का अंत)

'सरहदों की कहानियाँ' के माध्यम से देवी ने आम आदमी के यथार्थ, राजनीति, भ्रष्टाचार, सामाजिक कुरीतियों से छटपटाते उसके वजूद, बनते-टूटते सपनों, मानसिक चक्रव्यूह में फंसे अस्तित्व के अंतर व मनोभावों को तर्जुमा किया है।

- डॉ. संगीता र. सहजवानी
12 राम जानकी
356, लिंकिंग रोड, खार (प.)
मुम्बई-400052
फोन : 9833001496

अनुवाद भाषायी सद्भावना का मूलमंत्र हैं

– अमरेन्द्र कुमार

उस संसार की कल्पना भी संभव नहीं जहाँ कहानियाँ नहीं हों। यही कारण है कि हम किसी भी युग में रहे हों, किसी धर्म–सम्प्रदाय के हों अथवा संसार के किसी भी कोने में रहते हों कहानियाँ सदैव हमारे साथ–साथ हैं। कहानियाँ प्राचीन काल से मानव मन के निकट रही हैं। यही बात हिन्दी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं के लिये भी एक सच है। हर युग में, हर वय के बीच कहानियाँ एक महत्त्वपूर्ण कड़ी की तरह होती हैं। यही नहीं कहानियाँ काल और भूखंड के बीच की कड़ी होती हैं। भावों और संदेशों की संवाहिका कहानियाँ कभी–कभी देश और काल की सीमाओं के परे भी चली जाती हैं। भारतीय सन्दर्भ में कहानियाँ हमारी भावनाओं और संवेदनाओं से अधिक जुड़ी हैं। यही नहीं अध्यात्म से शुरू होकर दैनंदिन के कार्यकलापों को संयोजित और संवर्धित करने का काम भी कहानियाँ करती हैं।

आज से छह महीने पहले जब आदरणीया सुश्री देवी नागरानी जी ने मुझे इस प्रस्तावित कहानी संग्रह के लिये लिखने को कहा था तो मैं अचानक ही उत्साहित हो गया था। मुझे प्रसन्नता थी कि इसी बहाने सिन्धी कहानियों को पढ़ने का अवसर मिलेगा। हिन्दी के इतर अन्य भाषाओं की कहानियाँ पढ़ने में मेरी अधिक अभिरुचि रही है। यह और बात है कि कुछ कारणों से मैं इन सभी कहानियों को पढ़ने के आनंद से वंचित रह गया।

देवी नागरानी जी अमेरिका और भारत के बीच अपना समय

बाँटा करती हैं। मेरा उनसे संपर्क कोई दस साल पुराना है लेकिन उनके स्नेह और अपनेपन को अनुभव करते हुए समय का आकलन अब प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता। उनके बारे में उनके दूसरे परिचितों के भी मेरे जैसे ही विचार हैं। वे ग़ज़ल में सिद्धहस्त तो हैं ही साथ-ही-साथ अनुवाद और आलोचना में भी सक्रिय हैं। इस संग्रह को पढ़ते हुए हिन्दी के पाठकों को भी उनके अनुवाद कौशल से परिचित होने का अवसर मिलेगा- ऐसा मेरा विश्वास है।

सबको निज की भाषा बहुत ही प्रिय होती है। कहते हैं कि किसी को अगर मित्र बनाना है तो उससे उसकी भाषा में बात करके देखो। भाषा ऐसी मनमोहिनी है। सिन्धी भारत और पाकिस्तान दोनों जगह बोली जाती है। भारत और पाकिस्तान दो अलग देश तो हैं पर दोनों की संस्कृति एक ही है। वैसे भी आज अगर भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग देश हैं तो मात्र राजनैतिक कारण से, नहीं तो एकता की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें अनुभव न कर पाना एक प्रकार की मानसिक जड़ता ही होगी। मैंने कहीं पढ़ा था कि पाकिस्तान का 1947 के पहले का इतिहास भारत का ही तो इतिहास है। सच तो यही है। यह भी एक कारण है कि सिन्धी कहानियों के सरोकार हिन्दी से बहुत अलग नहीं। कहानियों के मूल में परिवेश का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस संग्रह के माध्यम से सिन्धी भाषा और समाज के परिवेश को समझने में मदद मिलेगी- ऐसी आशा है।

अनुवाद साहित्य की सभी विधाओं में अनमोल है। सच्चा अनुवाद दो भाषाओं के बीच सेतू की तरह है। यह दो भाषा-भाषियों के लिये वरदान भी है। इसके माध्यम से हम सहज ही भाषायी अज्ञान के परे जाकर अपने साहित्यानंद में अभिवृद्धि कर लेते हैं। हिन्दी के पाठक इस संग्रह के माध्यम से सिन्धी भाषा और समाज से साहित्यिक स्तर पर जुड़ेंगे। इन सिन्धी कहानियों के अनुवाद के माध्यम से देवी जी ने जिस कथा-साहित्य को हिन्दी जगत को भेंट किया है वह निश्चय ही स्वागत योग्य है। इस संग्रह के लिये मेरी असीम शुभकामानाएँ इसके मूल कथाकार, अनुवादिका देवी नागरानी जी, इसके प्रकाशक और हिन्दी-सिन्धी के पाठक वर्ग के साथ हैं।

ऐसे और भी प्रयास दोनों भाषाओं के बीच देखने को शीघ्र ही मिलेंगे– ऐसी आशा है और विश्वास भी।

जून 14, 2014

– **अमरेन्द्र कुमार**
2100 N Harvest Cir
Midland MI 48642
United States of America
Phone : 001-989 488 2178

कहानी-क्रम

दर्द की पगडंडी

◆डॉ. हिदायत प्रेम

यह दुनिया बड़ी अजीब है। कहाँ कहाँ के लोग आकर मिलते हैं, मिलकर बिछड़ जाते हैं फिर कोई किसी को याद करता है तो कोई भुला देता है। मिलने, बिछड़ने और फिर मिलने की आस उम्मीद पर आदमी जी रहे हैं, जीते है और ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। कुछ आदमी तत्काल मिलते हैं, सिर्फ़ कुछ पलों के लिये फिर भी हमेशा यादों में बस जाते हैं। किन के साथ अरसा गुज़ारने के बावजूद भी याद रखना मुश्किल हो जाता है। ज़िन्दगी में ऐसे कम आदमी मिलते हैं, जिनमें मानवता के मूल्य भरपूर होते हैं और वे खुद अनमोल मोती, उन्हें भुलाना नामुमकिन है।

सिन्ध की रवायती मेहमान-निवाज़ी पाकर कितने ही बाहर के मुल्कों के लोग यहाँ आते हैं और सम्मान पाकर लौटते हैं। ऐसा ही एक जोड़ा, सारा और ख़ज़र इंग्लैंड से यहाँ आया हुआ था। वह लंदन यूनिवर्सिटी के एक रिसर्च प्रोजेक्ट की तहत आया हुआ था। सलीम ने यथारीति उनकी ख़ूब खातिरदारी की थी। बहुत कम उम्मीद के बावजूद भी सलीम को दूसरे साल स्कॉलरशिप मिली और उसका दाखिला लंदन यूनिवर्सिटी में ही हो गया। लंदन यूनिवर्सिटी में 'कनॉट हॉल' में पहुँचते ही उसने सारा और ख़ज़र को 'विंडसर' में, जहाँ वे रहते थे, फोन किया। जाने क्यों सलीम को यह महसूस हुआ कि ख़ज़र के मुक़ाबले में सारा को ज़्यादा खुशी हुई थी। एक अंग्रेज़ स्त्री सारा, जिसने पाकिस्तान के एक नौजवान ख़ज़र से शादी की थी, सिन्ध घूम कर गई थी। सिंधियों की उदारता से वाक़िफ़ हो चुकी थी। सिंधियों की सादगी और सहृदयता से बहुत प्रभावित हुई थी। उसके भीतर शायद आतिथ्य सत्कार का जज़्बा पैदा हो गया था। फोन पर ही सलीम ने ऐसे ही मनोभावों की

ख़ुशबू महसूस की। सारा और ख़ज़र को उसने बताया कि वह कनॉट हॉल में ठहरा हुआ है, क्योंकि उन्होंने लंदन आकर सलीम से मिलने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की थी।

शुक्रवार के दिन विंडसर से ख़ज़र ने सलीम को फोन किया, "यार सुनाओ ख़ज़र, पहला हफ़्ता कैसे गुज़रा?"

सलीम ने जवाब दिया- "अभी तो बेगानों की तरह घूम रहा हूँ। फ़क़त यूनिवर्सिटी और ब्रिटिश म्यूज़ियम ही देख पाया हूँ।"

"ये तो बहुत कुछ हुआ। ख़ैर कल कहीं जाने का प्रोग्राम तो नहीं? वीक-एंड है।" ख़ज़र ने पूछा।

"नहीं, कोई प्रोग्राम तो नहीं है।" सलीम ने कहा।

"अच्छा तो फिर शाम को छ: बजे के करीब तुम्हारे पास आएँगे। कनॉट हॉल वही है न जो न्यू स्टॉक इस्क्वैर पर है और बगीचे में गांधी का पुतला लगा हुआ है।"

"हाँ बिल्कुल वही हॉल है। आपका शायद देखा हुआ है।"

"हाँ, हाँ! मैंने देखा है। अच्छा कल मिलते हैं।" कहकर ख़ज़र ने बात समाप्त की।

कनॉट हॉल, जिसमें सौ शार्गिदों के रहने की गुंजाइश थी, उसकी तीसरी मंज़िल पर सलीम को एक कमरा मिला था। पहले दिन कमरे में आया तो रात हो चुकी थी। थकावट के कारण जल्दी ही सो गया। सुबह जल्दी ही उसकी आँख खुली। पहले उसे सारा माहौल अजनबी लगा तो मन में सवाल उठा- "सलीम, कहाँ आ गए हो?"

याद आते ही- "अरे पागल भूल गए, लंदन पहुँच गए हो।"

सलीम उठा, कमरे की बंद खिड़की पर से लाल रेशमी परदा हटाकर खिड़की खोली तो सामने वाले बग़ीचे से ठंडी-ठंडी बयार ने उसका स्वागत किया। बाग में खड़े बड़े-बड़े मेपल के दरख़्तों के पत्तों ने खड़खड़ करते हुए स्वागत में सुर मिलाया। फूल भी न जाने कितने रंगों के, अलग-अलग प्रकार के खिले थे। बग़ीचे के कोनों में प्रतिष्ठित जन के पुतले लगे हुए थे पर एक पुतला बीच में भी लगा हुआ था, किसी आदमी का! पर उसकी ओर पीठ थी। पलथी मारे बैठे किसी शख़्स का पुतला। सलीम ने सोचा-

महात्मा बुद्ध होगा। पर फिर उसे देखने की चाह मन में हलचल मचाती रही। सलीम ने जल्दी से स्नान किया, कपड़े बदले और नीचे बेसमेंट में बने डाइनिंग हॉल में जाने के लिये लिफ़्ट में नीचे आया। लिफ्ट में उसने बेस्मेंट का बटन दबाने की बजाय ग्राउंड फ्लोर का बटन दबाया और लिफ़्ट हॉल के दरवाज़े के सामने आकर रुकी। वह तुरंत बाहर निकलकर रोड क्रॉस करके बग़ीचे में पहुँचा। वहाँ बीच में पहुँचकर उसे हैरत हुई। वह पुतला गांधी का था, जिसके चरणों में कोई फूल रखकर गया था। काले रंग के धातु से बना गांधी, बाग़ के बीच में बैठा था। सलीम ने पुतले के चारों तरफ चक्कर लगाया। गांधी जी ने धोती पहनी थी, कुर्ता नहीं था। नीचे तख़्ती के किनारे पुतला बनाने वाले कलाकार का नाम लिखा था– 'फ्रेडा बैंजमिन'!

शनिवार के दिन शाम को सलीम अपने कमरे में सारा और ख़ज़र का इंतज़ार करता रहा। हॉल की ओर से पौने छः से पौने सात तक रात का खाना खिलाया जाता था। सलीम ने सोचा– वह दोनों को खाने के लिये आग्रह करेगा। डिपार्टमेंटल स्टोर से फ्रूट जूस का डब्बा भी ले आया। अभी छः भी नहीं बजे थे कि नीचे रिसेप्शन ने आगाह किया कि आप के मेहमान आ गए हैं। सलीम नीचे जाकर उनसे मिला। वे जब सिन्ध में आए थे तब उसने कभी भी सारा से हाथ नहीं मिलाया था, आज सारा ने ख़ुद हाथ बढ़ाकर उसके साथ मिलाया। कमरे की ओर जाते हुए सारा ने उससे पूछा– "यहाँ पहुँचने पर यहाँ के माहौल के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं?"

"साफ़ सुथरा मुल्क देखकर आँखों को बहुत सुकून मिला। बहुत ख़ुश हुआ हूँ। स्कूल के उस्ताद भी अच्छे हैं। हॉस्टल भी बिल्कुल ही पास में मिला है।" सलीम ने सरलता से अपने मन की बात सामने रखी।

ख़ज़र ने कहा, "आपका स्कूल भी अच्छा है, लाइब्रेरी भी ढंग की है, आपके मुल्क़ में बतियाई भाषाओं और संस्कृति पर भी सर्वोत्तम पुस्तकें संग्रहीत हैं।"

सलीम ने बात को बदलते हुए कहा, "खाने का समय हो गया है, चलो चलकर खाना खाते हैं।"

"नहीं, हम तुम्हारे यहाँ खाना खाने नहीं आए हैं बल्कि तुम्हें खाने के लिये अपने साथ ले जाने आए हैं। कुछ वक़्त रुककर चलते हैं, किसी इंडियन

रेस्टॉरेंट में।" ख़ज़र ने अपनेपन के साथ कहा।

"अच्छा तो जूस पीते हैं!" कहते हुए सलीम ने प्लास्टिक के ग्लास में उन्हें जूस दी।

"हाँ, यहाँ किसी से मित्रता हुई है या नहीं?" ख़ज़र ने उससे पूछा।

"हाँ, यहाँ हॉस्टल में नासिर शाह साहब ख़ैरपुर के हैं। दूसरा लाहौर का रहवासी भी है। दोनों सरकार की ओर से यहाँ पढ़ने आए हैं। भले लोग हैं। दोस्ती हो गई है। एकांत का अहसास नहीं होता। एक सिख भी दोस्त बन गया है, मनप्रीत सिंह बादल- बिल्कुल बादल की तरह, ठंडी छाँव देता हुआ, मन को भाता हुआ।"

"स्कूल में पढ़ाई कैसी चल रही है?" अब सारा ने सवाल किया।

"सच पूछें तो पहले दिन वाले लेक्चर में तो कुछ समझ में नहीं आया, अब आना शुरू हुआ है। किताब भी पढ़ने के सुझाव दिए गए हैं। दो तीन कक्ष के विद्यार्थी भी मदद करते हैं। हर कक्षा में अलग-अलग कक्ष की लड़कियाँ हैं। एक है 'जूली', वह अंग्रेज़ है। 'ओ डीयर' बार-बार कहती है। मुझसे बड़ा स्नेह है। दूसरी है हांगकांग की 'छोई यंग चेंग'। उसे तो अंग्रेज़ी भी अच्छी नहीं आती। उसे कहा गया है कि पहले अंग्रेज़ी भाषा सीख ले। एक इंडोनेशिया से आया है, 'मलियानो' बहुत ही भला मानुस है। अपने मुल्क में अंग्रेज़ी का लेक्चरार है। सिंगापुर से भी लिसानियत का कोर्स किया है। अच्छी खासी जानकारी रखता है। मेरे साथ भी घुल-मिल गया है। पाँचवाँ है जापानी 'सातो', पूरा नाम 'यासू हैदी सातो' है। बहुत ख़ामोश रहता है, पर है बहुत होशियार। वैसे हमारे कई जनरल लेक्चर भी होते हैं, जिसमें अनेक विद्यार्थी शामिल होते हैं, और पढ़ाने वाले भी सीनियर प्रोफ़ेसर हैं। कोर्स बड़ी तेज़ रफ़्तार से बढ़ाते हैं। होम वर्क का बोझ भी काफ़ी ज़्यादा है।

"तुम्हारे स्कूल में मैंने भी तीन बार खाना खाया है। खाना अच्छा है और सस्ता भी। मैं स्कूल में अक्सर आती हूँ और कॉफी शॉप में भी सैंडविच वगैरह अच्छे मिलते हैं। भूख कम होती है तो कॉफी शॉप में जाती हूँ, नहीं तो यहीं पर खाना खाती हूँ।" सारा ने बताया

ख़ज़र ने कहा- "हम तुम्हें दावत देने आए हैं। तुम किसी वीक एंड पर 'विंडसर' आओ, तो हम तुम्हें पूरी तरह घुमाएँ। महल भी है, विक्टोरिया

वाटर्स भी है, और हाँ अपना वाला कॉलेज 'रॉयल कॉलेज आफ हॉलवे' भी दिखाऊँगा।"

"ज़रूर आऊँगा!" सलीम ने कहा- "पहले आपको सूचित करूँगा फिर चला आऊँगा।"

ख़ज़र ने हिदायती नमूने से कहा- "वाटर लू स्टेशन से विंडसर के लिये ट्रेन मिलेगी। स्टेशन पर हम तुम्हें लेने आएँगे।"

सलीम ने सोचा- किसी मौक़े पर विंडसर ज़रूर जाना है। उस दिन उन तीनों ने मिलकर टोटनहॉम कोर्ट रोड पर एक इंडियरन रेस्टॉरेंट में खाना खाया, उसके बाद वे अपनी कॉर से विंडसर की ओर रवाना हुए।

सलीम स्कूल की लाइब्रेरी के उस हिस्से में बैठा था जहाँ लसानियत और कानून की किताबें रखी हुई थीं। माहौल बिल्कुल शांत था। उस तरफ़ लोगों का आना-जाना न के बराबर था। सलीम पढ़ने में इतना मग्न था कि उसे पता ही नहीं चला कि बड़े टेबिल के उस छोर पर कोई आकर बैठ गया है। आँखें किताब से हटाकर सलीम ने देखा तो सामने ही एक लड़की बैठी पुस्तक पढ़ रही थी। लड़की ने भी उसकी ओर देखा और फिर पढ़ने में व्यस्त हो गई। काफ़ी देर की ख़ामोशी के बाद सलीम ने लड़की से पूछा- "आप कहाँ से आई हैं?"

शायद सहजता से यह पूछ बैठा कि लड़की के नाक-नक़्श एशियन से लगे, उसके बाल थोड़े छल्लेदार, रंग गोरा, क़द ठीक-ठाक था। उसने पैंट शर्ट पहन रखी थी, ऊपर से स्वेटर।

"अभी तो ब्रितानियाँ के हैं, और यहीं की नागरिकता बहुत सालो से है।" उसने अंग्रेज़ों के अन्दाज़ में बात की।

"यहाँ क्या पढ़ रही हो?"

"यहाँ कानून की डिग्री के लिये पढ़ रही हूँ। आप कहाँ से आए हैं और स्कूल ऑफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़ में क्या कर रहे हैं?"

"मैं पाकिस्तान से आया हूँ, लसानियत में डिग्री कोर्स करने। वहाँ मैं यूनिवर्सिटी टीचर हूँ। किस्मत ने यहाँ मुझे विद्यार्थी बनाकर भेजा है। मेरा नाम सलीम कुरैशी है.... और आपका?"

"पायल।"

नाम सुनकर सलीम के कानों में घुँघरू बजने लगे, "इतना सुन्दर और प्यारा नाम किसने रखा है?"

"मम्मा ने नाम रखा है। वह मैनचेस्टर में एशियन डांस स्कूल चलाती हैं और कथक डांस में ख़ास माहिर हैं।"

"फिर तो आप भी नाचती होंगी?"

"नहीं! मुझे मम्मा ने पढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया है। शुरू में थोड़ा डांस किया था, पर उसे अपना कॅरियर नहीं बनाया।"

सलीम और पायल बहुत धीमी आवाज़ में बातें कर रहे थे। वहाँ कोई तीसरा था भी नहीं, नहीं तो लाइब्रेरी में इतना भी बात नहीं कर सकते। पायल उठकर और पुस्तकें ले आई। टेबिल पर उन्हें रखते कहा– "दक्षिण एशिया में औरतों को अपने मज़हबों ने, जैसे जीवन गुज़ारने की इजाज़त दी है, पर प्रशासन उन्हें उस हद तक आज़ादी देने की बात नहीं करता। आपका क्या विचार है? दरअसल यह एक विषय मेरी असाइन्मेंट का है, जिस पर मैं आजकल काम कर रही हूँ।"

"मर्द को प्राबल्य हासिल है। औरत जुल्म की चक्की में पिस जाती है तो भी उफ़ नहीं करती। अब कुछ औरतें जाग्रत हुई हैं। वे औरों को राह दिखा रही हैं, क़ानूनी तौर पर भी मदद कर रही हैं, ख़ुद भी वे वकील हैं, इसलिये मिडिल क्लास में थोड़ा पढ़ी हुई औरतों में जागरूकता आई है। आप कभी वहाँ गई हैं?"

"नहीं, मैं कभी भी नहीं गई हूँ। पर मुझे वहाँ के औरत, मर्द और सारी सार्वजनिक जीवन की हालत की पूर्ण ख़बर है, तभी तो यह विषय लिया है।"

पायल की काली आँखें, काली भौंहें, दमकती पेशानी सलीम को घायल करने के लिये काफ़ी थी। उसका चमकता हुआ चेहरा हृदय में बस गया था। लाइब्रेरी में धीरे से चलने का लुभावना अन्दाज़ उसे बहुत भाया। पायल काम में व्यस्त थी, गालों पर बालों की गिरती लटें वह बार-बार अपने हाथ से हटाती रही।

सलीम रह रह कर उसे निहारता रहा और अपना काम भी करता रहा। लंच के समय दोनों उठे, बाहर निकलकर सलीम ने पायल को खाना साथ खाने की दावत दी। पायल ने माफ़ी माँगते हुए कहा– "मैंने एक सहेली को

समय दे रखा है, खाना भी उसके पास ही है।" ऐसा कहते पायल और सलीम फिर मिलने की उम्मीद का इज़हार करते हुए अपनी अपनी राह चले।

स्वास के कारीडोर्स, लाइब्रेरी, कॉफ़ी शॉप या यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन यूनियन और डिलन्स बुक शॉप पर पायल और सलीम की मुख़्तसिर 'हलो हाय' होती रही, एक दूसरे की तरफ चाहत भरे ख्यालों की लेन-देन और आख़िर में बाइ-बाइ गुड बाई कहते रहे।

उन दिनों पंकज उदास आए हुए थे और वेम्बली एरीना में जाने के प्रोग्राम की सूचना मिली। संगीत के दीवानों में खुशी की लहर दौड़ गई। टिकटें कुछ महंगी ज़रूर थीं, पर अपने सिख दोस्त मनप्रीत सिंह बादल को कहकर उसने दो टिकटें खरीद लीं। सलीम ने पायल को लिख भेजा :

"प्यारी पायल

पंकज उदास के संगीत का प्रोग्राम, 'वतन से चिट्ठी आई है' आगामी 28 तारीख को वेम्बली एरीना में है। मैंने अपनी और तुम्हारी, दो टिकटें ले ली हैं। मैं चाहता हूँ कि हम यह प्रोग्राम साथ में देखें।

उम्मीद है कि 28 के पहले इस चिट्ठी का जवाब ज़रूर दोगी।

तुम्हारा ख़ैरख़्वाह

सलीम"

सलीम खत बंद करके कानून वाले विभाग के ताको में pidgen holes के P वाले ताक में रख आया। हर विद्यार्थी विभाग के pidgen holes में अपनी डाक क़रीब हर रोज़ देखता था। सलीम को विश्वास था कि एक दो दिनों में चिट्ठी पायल को मिल जाएगी। वैसे ही जवाब लिखकर उसके विभाग में S वाले ताक में रख जाएगी। काफ़ी दिनों के बाद सलीम को पायल का जवाब मिला। उसने लिखा था :

"प्यारे सलीम,

तुम्हारी प्यार भरी ऑफर मुझे मिली। पर अफ़सोस कि 28 तारीख को मैं मैनचेस्टर जा रही हूँ, दो चार दिन मम्मा के पास रहूँगी, माफ़ी चाहती हूँ।

स्नेह के साथ

पायल

ख़त पढ़ते ही सलीम को काफ़ी दुख हुआ। पंकज का प्रोग्राम वह दोस्तों के साथ देख आया। पायल की बेरुख़ी को भुलाने की कोशिश करता रहा। एक दिन पायल उसे कॉफ़ी शॉप में मिल गई। वह कॉफ़ी पी रही थी। मुस्कराकर सलीम से मिली। सलीम अपने लिये चाय का कप ले आया। कॉफ़ी शॉप में ज़्यादा विद्यार्थी नहीं थे।

पायल ने बात शुरू की, "पंकज उदास का प्रोग्राम कैसा रहा?"

"प्रोग्राम तो निहायत अच्छा था, लोग भी बहुत आए थे। वह गाना लोगों को बहुत भाया– 'चिट्ठी आई वाला'। पर तुम नहीं चली, मैंने तुम्हें बहुत मिस किया।"

"सलीम, तुम और मैं ऐसी तहज़ीबों से वास्ता रखते हैं जो आपस में मिल नहीं सकतीं।" पायल ने कहा।

"तो क्या हुआ, हम अच्छे दोस्त तो बन सकते हैं!"

"सलीम, यह मत भूल जाना कि मुझे हर तरह की आज़ादी हासिल है पर न जाने क्यों तुम्हें दोस्त बनाते हुए, ख़ौफ़ लगता है।"

सलीम ने जवाब में कहा– "पायल, मैं तो ऐसा नहीं हूँ, मैंने तुम्हारे लिये अपने दिल के दरवाज़े खोल रखे हैं। तुम्हें ऐसी बेबुनियाद बातों पर सोचना नहीं चाहिए।"

"यही तो इस जग की कड़वी हक़ीक़तें हैं, जिनसे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता।" पायल ने सफ़ाई देते हुए कहा।

सलीम को मायूसी हुई। शायद वह इस तरह नहीं सोचता। उसके दिल में पायल के लिये जो उल्फ़त पैदा हुई थी, उसका दु:खद अंजाम वह आँखों से देख रहा था। उसे संशय ही नहीं बल्कि विश्वास हो गया कि वह पायल के दिल में स्थान नहीं बना पाएगा। ऐसी चाहत से और कुछ नहीं सिर्फ़ दर्द ही दर्द मिल सकता था। उसने ऐसे दर्द की पीड़ा को सहने का इरादा कर लिया।

कॉफ़ी पीकर पायल किताबों का थैला कंधे पर लटकाते हुए कुर्सी से उठकर जाने लगी, यह कहते हुए, "सलीम, मैं आने वाले टर्म में 'स्वास' से यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन जा रही हूँ। ओके बाइ, बाइ।"

सलीम इस बात की तह तक पहुँच चुका था कि अब पायल से रास्ते

चलते भी मुलाकात नहीं हो पाएगी। यह किस्सा यहीं खत्म समझना चाहिए। सलीम ने कुर्सी से उठते कहा– "बाइ, बाई, गुड बाई!"

सलीम ने पायल की ओर एक स्नेह भरा हाथ बढ़ाया था, जिसका अंजाम वह बेदर्दी के साथ दे गई थी। इस बात का सलीम को जाने कितने दिन अरमान और अफ़सोस रहा। वह अपने दिल को तसल्ली देता रहा कि शायद उसके नसीब में वही दर्द लिखा था, जिसे बर्दाश्त करने के सिवा और कोई चारा न था। ❑

गुफ़ा

◆अमर जलील

लगभग हर रोज़ ऐसा होता है कि अम्मा व्याकुल होकर मेरी गुफ़ा में चली आती है। वह पुष्टि करने आती है कि मैं ज़िन्दा हूँ या सौग़ातों से भरा यह जहान छोड़कर चला गया हूँ।

झुककर, मेरे माथे पर हाथ रखकर अम्मा ग़ौर से गर्दन की ओर देखती है, मेरा सर सलामत देखकर, ठंडी साँस लेकर, स्नेह के साथ मुझे सहलाती है और फिर आह को साँसों में समेट लेती है, आँख से लुढ़क आए आँसुओं का मेरे सर पर मेहराब बनाकर अपनी दुनिया में लौट जाती है।

बात यह है कि अम्मा अक्सर मेरे लिये परेशान रहती है। वह निरंतर हर रात मेरे बारे में एक डरावना सपना देखती है, ख़्वाब देखकर डर जाती है, काँप जाती है, नींद से चौंक कर उठ बैठती है और ख़ुद को सामान्य करने के लिये पानी का गिलास भर कर पीती है। अम्मा ख़्वाब में मुझे सर के बिना मरुभूमि में भटकता हुआ देखती है। मेरे एक हाथ में मेरा कटा हुआ सर और दूसरे हाथ में काँटों का ताज देखती है।

अम्मा ने दो पंडितों से ख़्वाब की विवेचना निकलवाई थी। दोनों में से एक पंडित देसी था और दूसरा परदेसी। देसी पंडित को वह सखर (सिंध के एक प्रांत का नाम) के क़रीब किसी पुण्य स्थान पर मिली थी। ग़ौर से ख़्वाब सुनकर उसकी कुंडली बनाने के बाद उसने अम्मा को ख़ुशख़बरी दी थी– "तुम्हारा बेटा बड़ी दीर्घायु जियेगा। ख़ुदा के वरदान से पाकिस्तााान का बादशाह बनेगा। वक्तव्य की क़ीमत अदा करते हुए अम्मा ने देसी पंडित को पाँच सौ रुपये दिये और साथ में एक काला मुर्गा और काला बकरा, जो इस बात के साक्षी थे। उन्होंने मुझे बताया कि बकरा हू-बहू मुझ जैसा था, जब

कसाई ने बकरे का सर धड़ से अलग किया और उसके मस्तिष्क से भेजा निकाला था तब बकरे के सर में से भेजे के बजाय मेंढक निकल आया था।

परदेसी पंडित को अम्मा 'वियना' में औरतों के संघ में मिली थी। मेरी अम्मा ने अपनी ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा पाकिस्तान में बरबाद हो गई औरतों की उन्नति और उनके मान-सम्मान की स्थापना में गुज़ारा। उसने एक एन. जी. ओ. भी बड़ी क़ामयाबी के साथ चलाया था, जिसके लिये सराहना के स्वरूप में प्रशंसा पत्र और सोने का मेडल हासिल हुआ था। उन दिनों अम्मा को औरतों की बेहतरी के सिलसिले में न्यूयार्क, हेग, लंदन, जेनिवा वगैरह प्रेस कांफ्रेंस में जाना पड़ता था। परदेसी पंडित से अम्मा की मुलाक़ात 'वियना' में हुई थी।

उस पंडित ने ख़्वाब का स्पष्टीकरण करने से पहले कुछ टिप्पणियाँ लैपटॉप पर power point और Excel के आधार पर रेखांकित कीं और बहुत ही उदास स्वर में ख़्वाब की विवेचना करते हुए कहा- "मुझे अफ़सोस है कि तुम्हारा बेटा शासकों के हाथों मारा जाएगा और अगर बच गया तो खुदकुशी कर लेगा।"

मैंने भी अपनी तरफ़ से इन्टरनेट से ख़्वाब की विवेचना डाउनलोड की थी। उसमें लिखा था- "तुम एक शादी-शुदा औरत के इश्क में गिरफ़्तार रहोगे और अपने सर में आशिक की तरह भस्म डालकर रेगिस्तान में घूमते रहोगे।"

तीनों विवेचनाओं में से अम्मा ने परदेसी पंडित के स्पष्टीकरण को ज़्यादा अहमियत दी। एक बार मैंने अम्मा से कहा था- "वियाना वाले पंडित की भविष्यवाणी बकवास है। सर सरदारों के गिरते हैं, मैं सीहर हूँ, बेमतलब ही आदमी बन गया हूँ। मैं शिकारी कुत्तों का निवाला तो हो सकता हूँ, पर किसी में अंधविश्वास के कारण अपना सर दे सकूँ, यह मुमकिन नहीं।" अम्मा को मेरी बात नागवार लगी, उसने मुँह दूसरी तरफ फेर लिया।

देसी पंडित की भविष्यवाणी मुझे सही लगी है। मैंने कहा था, "पाकिस्तान पर अक्सर मुझ जैसे मतिमंद, दीवानों ने हुकूमत की है। इसी कारण मुमकिन है कि मैं पाकिस्तान पर हुकूमत करूँ।"

मेरी माँ ज़रूरत से ज़्यादा पढ़ी-लिखी थी। शिकागो यूनीवर्सिटी से जातिगत विषय में पी.एच.डी. कर आई है इसीलिये मेरी बात समझ न पाई। मुझे उलझा

हुआ, कुछ कुछ बददिमाग़ समझती है। मैं उसका इकलौता बेटा हूँ। उसे तीन बेटियों के बाद जन्मा था। मैं समझता हूँ, सिंधियों के समस्त इकलौते बेटे कुछ कुछ सनकी, कुछ कुछ साँवले होते हैं, पर मैं कुछ ज़्यादा ही श्याम वर्ण का हूँ।

मुझे गुफ़ा से निकाल कर अपनी दुनिया में लाने के लिये अम्मा ने कोई कसर नहीं छोड़ी। पागलों के सर से पागलपन का भूत उतारने वाला शायद ही कोई डॉक्टर हो जिसने मुझे न देखा हो। दो तीन घंटे पूछताछ से मेरा दिमाग चाटने के बाद मुझे नींद आने की और सोच को शांत करने की गोलियाँ नुस्खे में लिखकर देते हैं।

एक बार अम्मा मुझे डॉक्टर सारा सोलंकी के पास ले गई। भगवान का लाख लाख शुक्र है कि वह स्त्री रोग विशेषज्ञ न थी, मनोवैज्ञानिक थी या मानसिक चिकित्सक। आदमियों के सर से पागलपन की बीमारी दूर करने में माहिर। वह बहुत ही सुन्दर थी। जिसने भी उसका नाम रखा था, सोच समझ कर रखा था। बहुत ही प्रशंसा के क़ाबिल थी वह। मुझे विश्वास नहीं कि मैं पागल हूँ या नहीं हूँ, डॉक्टर सारा सोलंकी को देखने के पश्चात् मुझे ख़्याल आया था कि मैं तमाम उम्र पागल बना रहूँगा। डॉक्टर सारा से इलाज करवाऊँगा तो कभी भी ठीक होने की कोशिश नहीं करूँगा। इन्टरनेट से डाउनलोड की हुई अम्मा के ख़्वाब की तीसरी भविष्यवाणी मुझे मुक़द्दर की अभिप्रमाणित कृपा लगी।

डॉक्टर सारा सोलंकी से मेरा परिचय कराते अम्मा ने कहा था– "अदम मेरा इकलौता बेटा है। अल्लाह ने आपके हाथों में शफ़ा दी है। आप मेरे बेटे का इलाज कीजिये, उसे नार्मल कर दीजिये।"

मुझे गुस्सा आ गया था, मैंने तर्क करते हुए कहा था– "मैं नार्मल हूँ।"

डॉक्टर सारा ने एकदम कहा था– "तुम ठीक कह रहे हो। मुझे यक़ीन है कि तुम नार्मल हो।"

"तो फिर अम्मा क्यों समझती है कि मैं नार्मल नहीं हूँ?" मैं उठ खड़ा हुआ और कहने लगा– "डॉक्टर सारा, मेरी और ग़ौर से देखो, क्या मैं तुम्हें अबनार्मल नज़र आता हूँ?"

"ऐसे बात नहीं करते बेटे!" अम्मा ने कहा था– "तुम के बदले 'आप'

कहो, क्या मैं आपको अबनार्मल नज़र आता हूँ?"

मैं कुर्सी पर बैठ गया।

"मैडम, अदम जिस तरह बात कर रहा है, उसे बात करने दीजिये।" डॉ. सारा ने अम्मा से कहा– "मैं चाहती हूँ कि आप वेटिंग रूम में जाकर बैठें। बुरा मत मानना, मैं अदम से अकेले में बात करना चाहती हूँ।"

अम्मा प्यार से मेरी ओर देखते हुए वेटिंग रूम की ओर चली गई। डॉ. सारा ने दोनों बाँहें टेबल पर रखकर ग़ौर से मेरी ओर देखा। वह मुझे बेहद पंसद आई थी। आख़िर डॉ. सारा ने मौन तोड़ते हुए कहा– "मुझे अपने बारे में बताओ अदम।"

"क्या बताऊँ?"

"अपने स्कूल के बारे में बताओ, कुछ अपने कॉलेज के बारे में बताओ, कुछ यूनिवर्सिटी के बारे में बताओ।"

"वहाँ कुछ भी असाधारण नहीं हुआ था, मैं बहुत साधारण विद्यार्थी था।"

"और नौकरी?"

"नौकरी मैंने छोड़ दी।"

"क्यों?"

"मैं नौकरी कर नहीं पाया।"

"कोई खास सबब था?"

"कोई खास सबब नहीं था।" मुझे माथे से पसीना बहता हुआ महसूस हुआ कहा था– "बस, मैं नौकरी कर नहीं पाया था।"

डॉ. सारा अपनी कुर्सी से उठकर मेरे बाजू में आकर खड़ी हुई। उसने पीने के लिये मुझे पानी का गिलास दिया था।

"अदम!" डॉ. सारा ने मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा था।

जहाँ तक मुझे याद आता है, मैं गर्दन ऊपर उठाकर डॉ. सारा की ओर देख नहीं पाया था। मुझे लगा था, अगर उसकी ओर देखा, तो वह हमारे बीच की सीमा–रेखा तोड़कर मेरे वजूद में घुस आएगी, मेरे भीतर हलचल मचा देगी।

"अदम!"

मैंने डॉ. सारा की आवाज़ सुनी।

"मेरी ओर देखो, अदम।"

मैंने डॉ. सारा की ओर देखा, वह अपनी कुर्सी पर बैठ रही थी। उसने पूछा– "तुम अपने कमरे से बाहर क्यों नहीं आते?"

"कमरा!" मैंने हैरत से पूछा था– "कौन सा कमरा?"

"घर में तुम्हारा कमरा।"

"घर, कौन सा घर?

"जहाँ तुम रहते हो।"

"मेरा कोई घर नहीं है।"

"तो फिर तुम कहाँ रहते हो अदम?"

"मैं गुफ़ा में रहता हूँ।"

अचानक मेरे ऊपर आसमान पर हज़ारों रथ चले आए, और एक पल में गुज़र गए। सदियों से बंद इतिहास के विषादपूर्ण सीने पर किसी ने हाथ रखा। आकाश में आकाशवाणी हुई, बिजली गिरी और क़िले की दीवार में दरार पड़ गई।

मुझे कुछ पता नहीं कि ऐसे क्यों हुआ था, और किसलिये हुआ था। मैंने दुष्ट लोगों से सुना था कि मेरे जन्म के बाद बाबा बहुत उदास हो गए थे, तन्हा और चुपचाप रहने लगे थे। हँसते हुए शायद ही किसी ने देखा हो उन्हें। कराची यूनिवर्सिटी में इतिहास के प्रोफेसर थे। इतिहास को सभी इल्म की सिन्फों का चश्मदीद गवाह मानते थे। देश में और देश के बाहर संस्थानों में उनकी बड़ी धाक थी। अपने पूरे नाम के बजाय 'प्रोफेसर रोहल' के नाम से मशहूर हो गए थे। मुझसे बहुत प्यार था उन्हें। बाबा उन इन्सानों में से थे जो बेटे के लिये हताश रहते हैं। तीसरी बेटी शानी के जन्म के बाद, अम्मा की बजाय बाबा ने चौथे बचे का ख़्याल दिल से निकाल दिया। शानी के तीन साल बाद मैं पैदा हुआ था। दुष्ट लोगों के मुताबिक़ बाबा बहुत उदास हुए थे। मुझे गोद में लेकर ख़्यालों में गुम हो गए थे। कुछ लोगों ने उन्हें रोते हुए देखा था।

होश संभालने के पश्चात् मैंने दुष्टों की बातों को ज़हन के हार्ड-डिस्क से मिटा दिया, हमेशा के लिये डिलीट कर दिया। मैंने महसूस किया कि बाबा

के अलावा शायद ही कोई ऐसा बाप होगा, जिसने इतनी शिद्दत से अपने बेटे से प्यार किया होगा। पर मैंने बाबा को कभी भी हँसते नहीं देखा था।

एक बार मैंने बाबा से कहा था, "मेरी सबसे बड़ी तमन्ना है कि मैं यशस्वी मसखरा बनूँ और अपनी हरकतों से, बातों से आपको ठहाका लगाकर हँसने पर मजबूर कर दूँ।"

मेरी बात सुनकर बाबा के होठों पर बहुत उदास, दिल को मसल देने वाली मुस्कान उतर आई थी।

"मेरे हँसने या न हँसने से कोई फर्क़ नहीं पड़ेगा।" बाबा ने मुझे नर्म छुहाव से प्यार करते हुए कहा था– "इतिहास ने बड़े ठहाके लगाकर हँसने वालों को आख़िर में रोते देखा है।"

कुछ देर की बैचेन खामोशी के बाद बाबा ने कहा था– "तुम्हारे पैदा होने के पहले मैं ज़ोरदार ठहाका लगाकर हँस सकता था।"

तब, बाबा के कहे वाक्य का मतलब मुझे समझ नहीं आया था। कॉलेज में पढ़ता था, लेक्चर सुनने की बजाय, बाबा के वाक्य के अर्थ के बारे में सोचता रहता। एक बार कॉलेज आधे में छोड़कर मैं कराची यूनिवर्सिटी गया था। बाबा ग्रंथालय में थे, किसी इंटरनेशनल सेमीनार के लिये पेपर तैयार कर रहे थे। मुझे देखकर हैरान हो गए।

"बहुत व्याकुल हूँ।" कहा था– "आपसे बात करनी है।"

बाबा के चेहरे पर उदास मुस्कुराहट उतर आई। टेबल से पेपर उठाकर ब्रीफकेस में डालते हुए कहा था– "मुझे ठहाका लगाकर हँसने पर मजबूर करने की क़सम तो नहीं खाई है?"

बाबा मुझे अपने डिपार्टमेंट के कमरे में लेकर आए, पूछा– "लंच किया है?"

"नहीं! मैंने जवाब दिया।

"मैंने भी नहीं खाया है।" बाबा ने कहा– "पहले हम खाना खाएँगे, और फिर यूनिवर्सिटी के बाहर चलकर बात करेंगे।"

कैंटीन वालों से फोन पर बात करने के पहले बाबा ने पूछा था– "शामी कबाब खाओगे? अच्छे होते हैं।"

"जो आप खाएँ, वही मेरे लिये भी मंगवा लें।" मैंने कहा था।

यूनिवर्सिटी कैंटीन से लंच आया। दाल, चावल और भाजी साथ में शमी क़बाब भी थे। चुप-चाप लंच किया। रह-रहकर एक दूसरे की ओर देख भी लेते। उस दौरान मुझे फिर-फिर यह ख़्याल आया कि बाबा से कुछ न पूछूँ, अपनी बैचेनी को अपने भीतर दफ़्न कर दूँ, दुष्ट लोगों की बातों पर ध्यान न दूँ, उन्हें बिना वजह परेशान न करूँ। उसमें कौन सी बड़ी बात है कि मेरे पैदा होने के बाद बाबा बहुत उदास और चुपचुप रहने लगे हैं। हो सकता है, मैं उन्हें पसंद न आया हूँ। वैसे भी बाबा ने तीन बच्चों की प्लानिंग की थी। शानी के तीन साल बाद मैं अचानक ही पैदा हुआ था। उनकी योजना अपसेट कर दी थी मैंने, पर इसमें मेरा दोष नहीं था। दुनिया में आना न आना मेरे बस में नहीं था। मुझे बस एक बात का अफ़सोस था कि मैं बाबा के लिये मनहूस साबित नहीं हुआ था। जिस बरस मैं पैदा हुआ था, उसी साल बाबा ने वर्ल्ड हिस्टोरिकल कांग्रेस (World Historical Congress) की अध्यक्षता की थी। मैं बाहर तेरह बरस का था कि बाबा एसोसिएट प्रोफेसर (Associate Professor) हुए थे और मैं सत्रह-अठारह साल का था कि बाबा डीन फैकल्टी ऑफ आर्ट (Dean Faculty of Arts) नियुक्त हुए थे, मैं मनहूस न था।

बरसों पहले की वारदात है, परदेस में रह रहे बाबा के एक पुराने मित्र अपने बच्चों सहित पाकिस्तान घूमने आए थे। कराची में हमारे पास आकर ठहरे थे। मुझे चॉकलेट खिलाते थे और पक्षियों के लतीफे सुनाते थे। उनके लतीफे पर और लोग कम, वे खुद बहुत हँसते थे। एक दिन मुझे खींचकर, आगोश में भरकर अपनी गोदी में बिठाया था और बाबा की ओर देखते हुए कहा था- "यार रोहल, न तो तुम अपने बेटे जैसे हो, और न ही तुम्हारा बेटा तुम जैसा है।" फिर अम्मा की ओर देखते पूछा था- "यह माजरा क्या है, अमेरिका से किसी काले का बेटा तो नहीं चुराकर ले आए हो?"

खुद ज़ोर-ज़ोर से ठहाके लगाकर हँस पड़े, पर बाबा हँस नहीं सके। उन्होंने हसरत के साथ मेरी ओर देखा। तब मैं छोटा था, प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था, पर मुझे सब कुछ याद हैं, मैं कुछ भी भूल नहीं पाया हूँ। मेरा एक-एक अहसास मेरे वजूद में परवान चढ़ा है, मेरे साथ बड़ा हुआ है।

यूनिवर्सिटी में बाबा के साथ लंच करते हुए एक स्पष्ट, अस्पष्ट भय

मुझे परेशान करता रहा था– मैं बाबा से कुछ पूछ सकूँगा या हकलाकर चुप हो जाऊँगा?

लंच के बाद बाबा ने पूछा– "चाय पिओगे?"

"आप पीयेंगे? मैंने पूछा था।

"वैसे तो नहीं पीता हूँ, आज पी लेते हैं।" बाबा ने जवाब दिया।

चाय भी चुप रहकर पी ली हमने। जाने क्यों मैंने महसूस किया था कि कुछ देर के बाद मैं पल्सरात से गुज़रूँगा। पल्सरात का सफ़र कराची यूनिवर्सिटी ओर ओझा सैनिटोरियम के दरमियान शुरू हुआ था।

"लोग बेटा पैदा होने पर ख़ुश होते हैं, मेरे पैदा होने पर आप ख़ुश क्यों नहीं हुए थे?" मैंने संकोच से पूछा।

"मेरी तीनों बेटियाँ किसी बेटे से कम नहीं हैं।"

"मैंने सुना है मेरे पैदा होने के बाद आप बहुत उदास हो गए थे। आपने लोगों से मिलना और बातचीत करना भी छोड़ दिया था?"

बाबा ने कोई जवाब नहीं दिया था।

"मेरी बात सुन रहे हो न, बाबा?"

"हाँ अदम, सुन रहा हूँ।"

"मेरे पैदा होने के बाद, आपको किसी ने हँसते नहीं देखा है।"

"हँसना बस में कहाँ होता है अदम?"

"मेरा पैदा होना आपको नागवार गुज़रा था?"

बाबा ने गर्दन नीचे कर ली, जवाब नहीं दिया था। मैंने दूसरी बार अपना ख़्याल दोहराया– "मेरा पैदा होना आपको नागवार लगा था?"

"बाबा!" मैंने बाबा के हाथ में अपना हाथ दे दिया, उनका दर्द मेरी समझ में नहीं आया, मैंने पूछा था– "मेरे पैदा होने पर आपको बहुत दुख हुआ था?"

बाबा ने मेरे हाथ को कुछ इस तरह जकड़ कर पकड़ लिया जैसे कह रहे हों– हाँ! तुम्हारे पैदा होने पर मुझे बहुत दुख हुआ था।

पल्सरात के बीच से मैंने बाबा से पूछा था– "क्यों दुख हुआ था आपको?"

"क्योंकि मेरा भरम टूट गया था।" बाबा ने मेरा हाथ छोड़ दिया था। फिर वे आसमान की ओर देखते रहे.... और कहने लगे– "तुम मेरे बेटे नहीं थे, अदम!"

मैंने ग़ैबी आवाज़ सुनी। सब कुछ समूची कायनात के साथ अंधेरे में गुम हो गया। मैं गुम हो गया, बाबा गुम हो गये। अंधेरे में जैसे करोड़ों निशाचर और चमगादड़ गुफ़ाओं से निकल आए, मेरे ऊपर से अंधेरे में घूमते रहे। गुफ़ा के एक पल ने अनश्वर के समस्त पलों को निगल लिया।

मैंने फिर गैबी आवाज़ सुनी। निशाचर व चमगादड़ गुफ़ाओं की ओर लौट आए, अंधेरे के बजाय नूर को बेनूर करने वाली रोशनी छा गई। सूरज पूरी तरह से डूब गया। मैंने खुद को बाबा से हज़ारों मील दूर महसूस किया।

मैंने बाबा से पूछा, "आपने कैसे समझा कि मैं आपका बेटा न था?"

"शानी के पैदा होने के बाद मैंने आप्रेशन करा लिया था।" हृदय में दरारें डालने वाली दुख भरी आवाज़ में बाबा ने कहा– "मुझसे बच्चे की उम्मीद, संभावना के बाहर थी।"

"अम्मा को पता था इस बात का?" मैंने बाबा की ओर देखते हुए पूछा था।

"छोटी छोटी बातों के लिये उसे फुरसत कहाँ होती है।" बाबा की आवाज़ की गूँज सुनाई दी– "वह अक्सर सियासी मुद्‌दों में शिरकत करने की ख़ातिर मुल्क के बाहर रहती थी।"

आसमानी किताबों वाली क़यामत जाने कब आएगी, पर मेरे लिये क़यामत आई और सब कुछ तहस-नहस करके चली गई। कुछ बाकी न बचा.... न हिसाब, न किताब, और न सज़ा न प्रतिफल।

बाबा ने यूनिवर्सिटी से इस्तीफा दे दिया। पाकिस्तान छोड़कर चले गए और नेपाल में जोगियों-वैरागियों के साथ हिमालय की गुफ़ाओं में जाकर बस गए। जाने से पहले बाबा ने मुझे बहुत प्यार किया था।

उनके सिसकते सीने में मुँह छुपाते हुए मैंने पूछा था– "मेरे कारण सन्यास ले रहे हैं न?"

"नहीं अदम, नहीं।" बाबा ने मेरी आँखों पर, गालों पर, माथे पर प्यार की छाप छोड़ते हुए कहा– "तुम्हारा कोई दोष नहीं बल्कि किसी का भी दोष नहीं है।"

उनके दोनों हाथ चूमते हुए मैंने कहा था– "तो फिर सन्यास क्यों ले रहे हैं?"

"एक माँ की पवित्रता का राज़ मेरे पास अमानत था।" बाबा का गोपनीय जवाब मेरी समझ में नहीं आया था। मैंने हैरानी से बाबा की ओर देखा।

"राज़ राज़ नहीं रहा है अदम।" बाबा ने अलविदा कहती निगाहों से मेरी ओर देखा था और कहा था– "अब तुम जान चुके हो कि इतिहास के प्रारंभी दौर की तरह उसके समाप्ति के दौर में इंसान को बाप की बजाय माँ के नाम से क्यों पुकारा जाता रहा। तुम्हारी ज़िन्दगी में मेरा रोल ख़त्म हुआ अदम।"

बाबा फिर ग़ायब हो गए।

कभी भी बाबा का ख़त आता, हर ख़त में हर बार एक वाक्य लिखते हैं, "तुम मुझे बहुत याद आते हो अदम।"

मैंने अपनी गुफ़ा को बाबा की याद से रोशन कर दिया है। एक दिन डॉ. सारा सोलंकी से कहा था– "यक़ीन करो सारा, मैं ठीक हूँ, सारी की सारी गडबड़ अम्मा के सर में है।"

"मैं कहाँ कहती हूँ कि तुम ठीक नहीं हो?" डॉ. सारा ने कहा– "पर तुम ऐसा कैसे कह सकते हो कि गड़बड़ मैडम के सर में है?"

"वह अक्सर मेरे बारे में एक ख़ौफ़नाक ख़्वाब देखती है।" मैंने कहा– "वह मुझे सर के बिना बयाबान में भटकते देखती है, मेरे एक हाथ में मेरा कटा हुआ सर और दूसरे हाथ में काँटों का ताज होता है।"

डॉ. सारा को कुछ-कुछ ताज्जुब हुआ था, पूछा था– "पर, मैडम ने तो कभी अपने किसी ख़्वाब का ज़िक्र नहीं किया है।"

"वह अपने ख़्वाब का किसी से भी ज़िक्र नहीं करती है।" मैंने कहा।

"तुम्हारे साथ करती हैं?" डॉ. सारा ने पूछा।

"बहुत कम! मैंने कहा– "ख़्वाब देखने के बाद वह गुफ़ा में चली आती है, मेरी गर्दन और सर पर हाथ फिराकर तसल्ली करती है कि मैं ज़िन्दा हूँ, या मर गया हूँ।"

डॉ. सारा ने कागज़ पर कुछ लिखा और पूछा था– "इस ख़्वाब के बारे में मैडम ने तुम्हारे साथ कब ज़िक्र किया था, मेरा मतलब है पहली बार?"

मैं सोच में पड़ गया।

मुझे याद नहीं आ रहा था कि अम्मा ने कब पहली बार मुझसे ख़्वाब

का ज़िक्र किया था। बाबा के ग़ायब होने के पहले वह मेरे बारे में डरावना ख़्वाब नहीं देखती थी, मेरे बारे में अच्छे ख़्वाब देखती थी। वह ख़्वाब में मुझे कपास से भरे रीछ के साथ खेलते देखती थी। अम्मा कभी भी अपने ख़्वाब की विवेचना किसी देसी या परदेसी पंडित से नहीं करवाती थी। जब भी विलायत से वापस लौटती मेरे लिये तोहफ़े के रूप में एक कपास से भरा रीछ ज़रूर ले आती। मैं समझता हूँ, या मुझे गुमान है कि बाबा के ग़ायब होने के पश्चात् अम्मा ने मेरे बारे में, पहली बार डरावना ख़्वाब देखा था। इसके पहले कभी भी नहीं देखा था पर बाद में ख़्वाबों की दुनिया में बहुत तोड़-फोड़ हुई।

अम्मा मुझसे बार-बार पूछती, "जाते समय तुम्हारे बाप ने तुमसे क्या बात-चीत की?"

और हर बार मैंने उसे वही एक जवाब दिया था -"उसने मेरे साथ जानकारी की दर्दनाक यंत्रणा के सिलसिले में बात की थी।"

अम्मा जवाब की गहराई तक पहुँचने की कोशिश करती थी, पर पहुँच न पाती, परेशान हो जाती, जैसे तड़पती रहती, खंडहर जैसे घर में बेमक़्सद घूमती थी, अपने आप से बात करती। एक बार उसने कहा था- "मैं रोहल जैसी संवेदनशील नहीं हूँ। इसलिये तुम मेरे साथ जानकारी की बात न कर, सिर्फ़ बता दो कि जाते वक़्त उसने मेरे बारे में क्या कहा था?"

"तुम्हारे बारे में कुछ नहीं कहा था।" मैंने ग़ौर से अम्मा की तरफ देखते हुए कहा था- "उस पुण्यात्मा को ख़बर थी कि मैं उसका बेटा नहीं था।"

धरती हिल गई, भूकंप की तरह, फिर न जाने कितने साल और सदियाँ ख़ामोशी का एक मौसम ले आईं और गुज़र गईं। बाद उसके न कोई जलजला आया, न कहीं ज्वालामुखी फूटा, न बिजली कड़की, न आसमान से झरने बरसे और न समुद्र में बाढ़ आई।

उस ख़ामोशी को मैंने तोड़ा था, यह ज़रूरी था, वर्ना साँस लेना मुहाल हुआ होता।

"अगर आसमान तक मेरी पहुँच मेरी शक्यता में होती तो शायद मैं मरने तक तुमसे कभी न पूछता।" मैंने अम्मा से कहा और फिर पूछा-" इसलिये, तुम सुनाओ कि मैं किसका बेटा हूँ?"

अम्मा काँप गई, मेरी ओर बढ़कर आई, मुझे स्नेह से अपने प्यार में सरोबार करते कहा– "क्या यह काफ़ी नहीं कि मैं तुम्हारी माँ हूँ?"

"जिस घोर यातना से मैं गुज़रा हूँ, उसमें यह काफ़ी नहीं है। मुझे बताओ कि मैं किसका बेटा हूँ?"

अम्मा लाचार होकर यहाँ वहाँ देखने लगी, और फिर टूटे-फूटे लहजे़ में जैसे अपने आप से बात करते हुए कहा था– "मुल्कों के बनने और बिगड़ने के बाद कई ऐसे बालक पैदा होते हैं जिन्हें अपने बाप का पता नहीं होता है, वे अपनी माँ से बाप बारे में सवाल नहीं पूछते।"

"मेरे पैदा होने से न मुल्क बना था और न ही कोई मुल्क बिगड़ा था, हाँ मेरे पैदा होने से एक आदमी का भरम टूट गया था।"

मैं समझता हूँ इसके बाद अम्मा ने फिर कभी भी मुझे ख़्वाब में कपास से भरे रीछ के साथ खेलते नहीं देखा है, न उसके बाद उसने मुझे सर के बिना बयाबान में भटकते देखा है। पर ये बातें डॉ. सारा सोलंकी को बताने जैसी न थीं, इसलिये वह मेरा इलाज करती हैं, अम्मा का इलाज नहीं करतीं। वह मुझे अच्छी लगती हैं और इन्टरनेट से डाउनलोड की हुई अम्मा के ख़्वाब की ताबीर लगती हैं। पर इसके बावजूद भी सारा का ये बातें जानने का जुनून मैं मुनासिब समझता हूँ, बल्कि मैं उस बात का ज़िक्र किसी से भी करना नहीं चाहता। जिस राज़ पर से क़यामत के दिन पर्दा उठना नहीं है, उस राज़ से पर्दा उठाने का हक़ मैं भी नहीं रखता। मेरा बाप जाने कौन है पर हक़ीक़त में मैं बेटा उस शख़्स का हूँ जिसने हिमालय की एक गुफ़ा में जाकर सन्यास लिया है। ❑

मुलाक़ात

◆रशीदा हिजाब

आज फिर ज़ोया का फ़ोन आया। गुज़रे एक महीने से वह कई बार फ़ोन कर चुकी है। एक दो बार आकर भी कह गई है, उसकी इल्तिजा है कि मैं शीबा से मिलूँ। वैसे भी शीबा से मिले बरसों हो गए थे। उससे कैसे मिलूँ? किस मुँह से मिलूँ? हक़ीक़त तो यही है कि मेरी ही हिम्मत नहीं हो रही थी। एक लम्बे अरसे से न तो उसका हाल ही जाना था, न ही कभी उसे अपने पास बुलाया था। अभी तो उसके पदचिन्ह भी यादों के कैनवस पर धुँधले से होने लगे थे।

शीबा वह हस्ती थी जिसे मैं एक पल भी खुद से जुदा करने की बात सोच ही नहीं सकती थी। वह मेरे ही वजूद का एक अहम अंग बन गई थी। सही सही तो याद नहीं पर इतना ज़रूर याद है कि उसके साथ मेरी पहली मुलाक़ात एक छोटे शहर में हुई थी। हम दोनों एक बड़े घर के आंगन में खेलते-खेलते, एक दूसरे की हमराज़ और साथी बन गई थीं। वह एक सेहतमंद और लुभावनी शक्ल की लड़की थी, पर उसके बावजूद वजूद की कभी न भूल पाने वाली बात थी उसकी प्रतिभा और भरपूर ज़िंदगी की चमक से रोशन आँखें और उसके गालों पर बनने वाले दो खूबसूरत कपोल भंग (dimples). अजीब बात यह थी कि वह हँसमुख और ज़हीन लड़की एक घड़ी में बैठे-बैठे अचानक गौतम बुद्ध की तरह ख़ामोश हो जाती थी। फ़लसफ़े और ज्ञान का संगम उसे एक और शख्सियत का स्वरूप प्रदान करते थे। उन दिनों में ही उसने लिखना शुरू किया और थोड़े ही समय में बाल-साहित्य के अदब में उसका नाम हो गया। कभी-कभी उसे बात करते सुनकर यह यक़ीन ही नहीं होता था कि जो लड़की पत्थरों के टुकड़ों को पाँव से ठोकरें

लगाकर कूदा करती थी वह अदीबा बन जाएगी! काफ़ी अरसे तक वह मुझसे दूर चली गई।

एक लम्बे अंतराल के बाद उससे मुलाक़ात हुई तो वह पहले वाली उत्पाती, अस्त-व्यस्त रहने वाली शीबा न थी। उसकी चाल में हिरणी वाली मस्ती तो अब भी थी, आँखों की चमक भी हीरों को मात दे रही थी, गालों के सुंदर कपोल भंग छुपाए नहीं छिप रहे थे और सबसे बड़ी बात अब उसकी जवानी में ख़ूबसूरती भी शामिल हो गई थी। उसके बेहद घने बाल अस्त-व्यस्त न होकर दो मोटी चोटियों में बंधे काले नाग की तरह उसके गले में झूल रहे थे।

"अरे शीबा, तुम इतनी बड़ी कैसे हो गई?" (वह न सिर्फ़ क़द में, पर दर्जे और सम्मान में भी बहुत बड़ी हो गई थी।)

"तुमसे तो मिलने के लिये भी अब सोचना पड़ता है।" मैंने फीकी सी हँसी हंसते हुए बात की तो वह हमेशा की तरह बेझिझक होकर मेरी बाँहों में अपनी बाँह डालकर ठहाका भरते हुए कहने लगी -

"अरी, पागल हो गई हो क्या? दुनिया के लिये कुछ भी रहूँ, तुम्हारे लिये तो वही छुटपन वाली शीबा हूँ। मैं तुम्हें क्या बताऊँ कि मेरे लिये सबसे ज़्यादा खुशनुमा लम्हा वही होता है जब मैं तुम्हारे साथ होती हूँ।"

वह ग़लत नहीं कह रही थी पर मुझे ऐसा महसूस होने लगा कि वह एक उत्तेजनाहीन अंदाज़ में मुझसे दूर होती जा रही है। अब उससे मिलने के वक़्त वह जोश, जज़्बा और उमंग महसूस न होती थी। उसको औरों से घिरी हुई देख, मैंने ख़ुद अपने क़दम पीछे कर लिये।

अखबारों में, रसालों, टी.वी. और रेडियो के माध्यम से उसके बारे में मालूम होता रहता था। कभी-कभी उसकी तस्वीरें भी अखबारों में आ जाती थीं। एक लम्बे अरसे के बाद उसकी तस्वीर एक रसाले में देखी तो चौंक उठी। रसाला फिर फिर उठाकर देखा। नाम उसका ही था पर सूरत इतनी बदली हुई थी कि ख़ुद को यक़ीन दिलाने की कोशिश में मैं नाक़ामयाब रही कि यह वही शीबा है। वह एक बड़ी संस्था की व्यस्थापक व निर्वाहक थी। टेलीफ़ोन नम्बर हासिल करके उसे फ़ोन किया तो पहला शब्द सुनकर ही वह चिल्ला उठी-

"अरे, आज कैसे तुम्हें मैं याद आ गई?"

"याद नहीं आई, अब तुम याद उन्हीं को आओगी जो तुम्हारे आस-पास मज़बूत क़िले बनाकर खड़े हैं।"

"पक्के नहीं, कच्चे क़िले.... अरे यह तो कच्ची मिट्‌टी की कच्ची दीवारें हैं, मेरा मज़बूत पक्का किला, मेरा पुख़्ता आश्रय तो तुम हो।" उसने कमज़ोर आवाज़ में कहा।

"शीबा, तुम ठीक तो हो? तस्वीर में इतनी कमज़ोर और आवाज़ इतनी टूटी और बिखरी-बिखरी, हमारी शीबा तो ऐसी न थी।"

उसने जवाब क्या दिया, मैं समझ नहीं पाई। शायद उसके आस-पास काफ़ी लोग थे, या वह कोई समस्या सुलझा रही थी।

"मैं तुमसे बाद में बात करूँगी।" फिर फ़ोन बंद कर दिया। पहले मैं कुछ खफ़ा हुई पर बाद में बेइन्तहा दुख हुआ।

उसी दिन ज़ोया का फोन आया। मैंने उसे सुबह वाली बात सुनाई तो वह थोड़ी देर के लिये चुप हो गई, फिर कहा- "तुम कब से उससे नहीं मिली हो?"

जवाब देने के लिये होंठ हिले तो शर्मिंदगी से उन्हें फिर खोल न पाई।

"यक़ीनन, तुमने अरसे से उसे देखा नहीं है। वह बहुत कमज़ोर, क्षीण है और उसका दिल भी टूटा हुआ है। वह हम सबसे बहुत दूर चली गई है। तुम्हारे और मेरे जैसे दोस्त और प्यार के दावेदार उसे मुश्किल और दुश्वार राहों पर अकेला छोड़ आए हैं। तुम्हें तो याद है, वह गली में छोटे बच्चे को रोता हुआ देखती थी तो किताब के बीच में रखा अपनी खर्ची वाला एक रुपये वाला नोट बच्चे के हाथ में देकर आती थी। ईद पर पड़ोस में रहने वाली ग़रीब छोकरी रहीमाँ नए कपड़े न पा सकी तो अपना नया क़ीमती जोड़ा मोतियों के हार समेत ज़मीन पर फेंककर माँ के साथ लड़ने लगी।

"क्यों बनवाया आपने यह फीरोज़ी जोड़ा? आपको पता है कि यह रंग मुझे ज़रा नहीं भाता। नहीं चाहिये मुझे यह जोड़ा जाकर रहीमाँ को दे दो, तो वही पहन ले।" गुस्से का गुस्सा और रहीमाँ की ईद की ईद! उस की इस ख़ामोश हमदर्दी को सब समझते थे इसलिये उसकी माँ पहले से ही बंदोबस्त कर रखती थी, फ़ीरोज़ी के साथ नीला जोड़ा भी तैयार रहता था।

पढ़ाई में होशियार होने के कारण हमारे सारे ग्रुप को स्कालरशिप मिलती थी। सत्ताइस रुपये महीने के हिसाब से साल भर में अच्छा ख़ासा पैसा मिलता था। हम जान बूझकर छिपकर जाकर स्कालरशिप लेते थे कि कोई सोने की अंगूठी या कोई अच्छा जोड़ा ले सकें। वह बार-बार वादा करके ईद बाज़ार जाने के समय गुम हो जाया करती थी। एक बार उसकी चोरी पकड़ी गई। बर्फ़ की कुलफ़ियाँ बेचने वाला पड़ोसी रफ़ीक़ जल्दी-जल्दी जा रहा था, ज़ोया ने जाकर हाथ पकड़ा, "ये क्या छिपाकर भाग रहे हो?"

बेचारा बच्चा डर गया, एक ही डाँट में सच स्वीकार कर लिया- "बहन दो बार मैट्रिक में फेल हुआ हूँ.... कुलफियों के धंधे पर घर चल रहा है। फिज़िक्स और मैथ में ट्यूशन की ज़रूरत है। दीदी ने कहा तुम ज़रूर पढ़ो। ट्यूशन फ़ीस उसने दी है। लड़के ने मुट्ठी खोली- सौ सौ के चार कड़क नोट खड़-खड़ करने लगे। हम दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा वह शर्मिंदा होकर यहाँ वहाँ देखने लगी, जैसे उसने नेकी नहीं बल्कि चोरी का काम किया हो।

ऐसी सचेतन संवेदनशील मन वाली, इतना प्यार करने और प्यार देने वाली शीबा अब अफ़सरी के पद पर, प्रभुत्व-प्रतिभा, नियमों, फ़ैसलों के जाल में, क़ायदे-क़ानूनों की ज़ंजीरों में जकड़ी हुई, अपनी तबीयत की अवहेलना कर रही है।

"तुम उससे ज़रूर मिलो। उसे हमारे प्यार की जितनी अब ज़रूरत है पहले कभी भी न थी। उसका ग़म, उसकी तन्हाई है। इतनी भीड़ में रहते भी वह अकेली है, दिल शिकस्ता है।"

जितनी देर ज़ोया बतियाती रही मेरे तस्व्वुर में तरो-ताज़ा गुलाब के फूल जैसी निखरी-निखरी आँखों वाली शीबा फिरती रही। उसके लम्बे बालों के बिखरे हुए स्याह-स्याह बादल मेरी आँखों में उतर आए। अगले पल मेरे क़दम उसके ऑफ़िस की ओर बढ़ गए। ऑफ़िस के बाहर गार्ड बंदूक लिये बैठा था। उसके कमरे के पहले, उसकी सेक्रेटरी का कमरा था। मुलाक़ात के पहले उनसे इजाज़त लेनी ज़रूरी थी। मैं मन ही मन में हँसी। शीबा जैसी निरुपद्रव, निष्पाप, सदाचारी और अमन पंसद, बल्कि किसी हद तक बुज़दिल शख़्सियत को इस दिमाग़ी फ़ौज की क्या ज़रूरत पड़ी! मैं दोनों कमरे पार करके उसके

ऑफ़िस में आई। वह अपने शानदार ऑफ़िस में हमेशा की तरह गहन विचारों से घिरी हुई थी। एक पल के लिये मेरा दिल गर्व से भर गया। इतनी इज़्ज़त, इतनी शान, ऐसा मुक़ाम उस छोटी सी कमज़ोर लड़की को सिर्फ़ व सिर्फ़ उसकी नेकदिली और मेहनत के बदले मिला था। वह कोई और नहीं हमारी शीबा थी। पर दूसरे पल जब उसके चेहरे पर नज़र पड़ी तो ज़ोया का रोना याद आ गया। वक़्त और कई सालों की मेहनत ने शायद अब उसकी हड्डियों को निचोड़ डाला था। आँखों में प्रतिभा की नमी तो आज भी झलक रही थी पर जवानी की लौ दम तोड़ती नज़र आ रही थी। चेहरे का गुलाब जाने कब कुम्हाला गया था। घने काले बालों में चांदी की तारें लिपटी हुई थीं। मुझे देखकर वह बे-इख़्तियार हो उठी। मुस्कान उसके चेहरे पर छा गई। उसके गालों में पड़ते सुंदर कपोल भंग जाने कहाँ ग़ायब हो गए थे? वही तो थे जो हर किसी को उसके आकर्षण में डूबने को मजबूर करते। वह अपने दोनों हाथ और बाँहों फैलाकर बे-अख़्तियार मुझसे मिलने के लिये आगे बढ़ी पर उसी समय टेलीफोन की घंटी ज़ोर-ज़ोर से बजने लगी। पास में रखा हुआ लाल बल्ब भी जल्दी-जल्दी जलने लगा वह रुक गई। रिसीवर उठाकर कुछ देर फ़ोन पर बात करती रही। उसके चेहरे पर फ़िक्रमंदी की लकीरें उभरने लगीं। रिसीवर रखकर वह तुरन्त बाहर निकलने लगी। मेरे स्वागत के लिये उठे हुए उसके हाथ और बाँहें नीचे की ओर लुढ़कीं।

"माफ़ करना, मैं तुमसे आज मिल न सकूँगी। एक एमर्जेंसी है। मुझे इसी वक़्त ही एक अहम मीटिंग में भाग लेना है।"

वह तेज़ी के साथ चली गई और मैं दरवाज़े पर खड़ी सोचती रही-

'तुम कब मिलोगी? कब अपने वजूद के इस बिछड़े हुए हिस्से को मुलाक़ात का मौक़ा दोगी? क्या तुम और मैं हमेशा के लिये अलग हो गए हैं? तुम्हारे संवेदनशील दिल का यह नर्म कोना, तुम्हारे कागज़ और क़लम, तपती दोपहरी की मिट्टी उड़ाती गर्म मगर ज़िंदगी से भरपूर हवाएँ और सर्दी की लंबी सर्द व जटिल रातें, बहार में नरगिसी ख़ुशबू से भरी हवाओं के काफ़िले, सभी मेरी तरह तक अरसे से तुमसे मिलने के लिये बेक़रार खड़े हैं यह मुलाक़ात ख़ुद से तुम्हारी कब होगी? ❑

रिश्ता

◆तारिक़ आलम अबरो

पानी की चुस्की भरते हुए महसूस हुआ, ख़्वाब ज़हन में आने की बजाय ग्लास में उतर आया हो, ऐसा ख़्याल आते ही मसूर के होंठ ग्लास के शिष्ट किनारे पर थम गए।

'ख़्वाब का कोई ज़ायका भी होता है....?' मसूर ने सोचा। उसके होंठ जवाब की तलाश में ग्लास के किनारे को चूमने लगे, 'ख़्वाब का भी पानी की तरह बेनाम ज़ायक़ा होता है। ख़्वाब का तो कोई रंग भी नहीं होता है। ख़्वाब, पानी की तरह पारदर्शी होता है, जिसकी सतह पर बेपनाह ख़्वाहिशों की रोशनी जब भी अपनी उँगलियों से छूती है, तो ख़्वाब पानी में कितने ही अलग रूपों में उभरता है, ख़्वाब पानी जैसा ही कुछ है या शायद सहरा में पानी के घूँट के लिये छलांग भरते हिरन की नाभि में छुपी ख़ुशबू की सुगंध है....!

ख़्वाब जीवन का हिस्सा रहे हैं, या उसका जीवन किसी मुसलसल ख़्वाब का हिस्सा, दोनों एक दूसरे में घुले मिले हैं।

बचपन में.... माँ के चेहरे को हाथों में पकड़कर आशिक की तरह देखने लगा था। माँ ने पूछा था– "क्या देख रहे हो राणा?"

"तुम ख़्वाब हो क्या?" फिर पूछ बैठा था। माँ मसूर के मासूम सवाल पर मुस्करा उठी। मुस्कराते जवाब दिया था– "मैं ख़्वाब नहीं तुम्हारी अम्मा हूँ।"

सालों बाद...

जब घर के आंगन में मसूर की हम-उम्र नीम के पेड़ ने अट्ठारह साल की चौखट छुई, तो उसकी नन्हीं नाज़ुक डालियों पर लगी निमोड़ियाँ आंगन

के कुएँ को ढाँप लेतीं। गर्मियों में गूँगी हो गई दुपहरी में, रोशनदान पर खेलते पक्षियों की चर-चर पूरे घर में गतिमान हो रही थी। कुछ दूर ही खेत के किनारे पर उग आई बेरों की फ़सल की हलचल, वरांडे में खाट पर लेटी अम्मा के सोए सीने में दर्द की लहर बनकर उभर आई और मसूर से माँ छीनकर चली गई। मसूर ने, माँ के पाक चेहरे को जवान हाथों में पकड़कर भोलेपन के साथ अपना सवाल दोहराया-

"अम्मा, तुम ख़्वाब हो क्या....?"

पर जवाब में माँ को लाजवाब देखकर बेचैन हो गया था। उतावली में माँ के गालों पर हाथों की पकड़ पुख़्ता करके आँसुओं को रोकते हुए चीखा था-

"तुम ख़्वाब हो क्या अम्मा, ओ... मेरी अम्मा...माँ...."

बड़ा भाई दुलार करते हुए उसे बाहर ले गया था। बाहर आकर भाई के आग़ोश से खुद को आज़ाद करवाकर टूटी हुई सुमिरनी की तरह कालीन पर बिखर गया। सिसकियाँ, आँसू और मसूर घुल मिल गए थे।

शाम को सिसकियों और आँसुओं से जुदा हुआ तो डायरी में लिखा था- हम मुसलसल ख़्वाब में जी रहे हैं, जिसमें से जब भी कुछ लम्हों के लिये जागते हैं, तो किसी न किसी को खो बैठते हैं।

कभी अगर ख़्वाबों के बीच में से जागा तो महसूस हुआ था, जैसे किसी ने उसके होठों से लगे ग्लास को छलका दिया हो। ऐसे छलके हुए ख्वाबों से चौंक कर जागने पर वह तुरंत कपड़े झटकने लगता था। रात को छलकते ख़्वाब से जागने पर कमीज़ झटकरने की बजाय, वह जैसे ही बेडरूम का दरवाज़ा खोलकर बाहर जाने लगा था, रूप जागकर मसूर की नंगी पीठ पर पल भर के लिये हैरान निगाह से देखते हुए उनिंदे लहज़े में पूछ बैठी-

"कहाँ...?"

"ख़्वाब कमीज़ पर छलक गया है।" उन्मादी आवाज़ में कहा था- "टांगने जा रहा हूँ।"

"कमीज़ को या ख़्वाब को?" निद्रालू मुस्कान से पूछा था, और मसूर के जवाब के इंतज़ार के बिना चादर लपेटकर सो गई थी, शायद वह पहले दिन से ऐसी हालात की आदी हो चुकी थी।

जिस दिन रूप की गाड़ी शहर का जटिल मोड़ पार करते सुनसान रास्ते के बीच अचानक झुककर कुछ उठाते हुए मसूर से टकरा गई थी, हैरत से ब्रेक लगाकर, स्विच ऑफ करके उसकी ओर बढ़ी थी। वह उस वक़्त घुटनों के बल बैठने की कोशिश कर रहा था। सर से खून की लकीर दायें भौंह से रास्ता बदलकर गाल की ऊपरी हड्डी के पास आकर विरामी हुई।

"ये आप बीच राह में क्या कर रहे थे....?" रूप ने आगे बढ़कर उठाने में मदद करते हुए पूछा। उसने खुद को संभालते हुए रूप की ओर देखे बिना कहा था– "तितली....."

"जी।" रूप ने नासमझी में कहा था।

"उठा रहा था कि कहीं किसी पहिये के नीचे न आ जाय।" कहते हुए मसूर ने पूरी तरह से अपनी मुट्ठी खोल दी। रूप ने मसूर के दायें हाथ की खुली हुई हथेली पर रखी एक तितली की ओर निहार कर विस्मित होते हुए कहा–

"पर यह तो मरी हुई है।"

"हाँ, पर फिर भी है तो तितली ही ना...." मसूर जवाब देकर कुछ ढूँढने लगा, तो उसकी नज़र कार के आगे वाले पहिये के पास पड़ी डायरी पर ठहर गई। रूप ने डायरी उठाकर उसकी ओर बढ़ा दी थी।

"मेहरबानी!" उसने कहा था और तितली को डायरी में संभाल कर रखा और चलने को हुआ।

"आपके सर पर चोट लगी है।" कहते हुए रूप ने ड्राइविंग सीट पर रखे टिशू बॉक्स में कुछ टिशू निकालकर मसूर की ओर बढ़ाये। उसने आगे बढ़कर टिशू पेपर लेते हुए रूप के चेहरे पर लहराती सफेद बालों की लट देखी और मेहरबान आँखों में झाँका तो पल भर के लिये उनमें अपनी माँ की परछाई पाई।

"आओ, आपकी मरहम पट्टी करवा दूँ।" रूप ने कहा था।

मसूर, टिशू लेकर चेहरे से लगभग जम गए खून को पोंछते हुए कहता रहा– "मेहरबानी। मेरे ज़ख्मों को तुम्हारे दिये हुए टिशूज़ से ज़्यादा किसी भी फर्स्ट एड की ज़रूरत नहीं।

रूप को वह किसी दीवाने जैसा लगा, कुछ देर वह उसके लापरवाही

से उठते क़दमों को निहारती रही। रूप की निगाह मसूर के क़दमों से लिपट गई थी। उसने अपनी जागरूक नज़रों का ध्यान रोड की ओर मोड़ा और कार स्टार्ट करके मसूर के रोड क्रॉस करते ही आगे बढ़ी थी। उसकी निगाह बैक मिरर में दुबारा उसके क़दमों में लिपट गई थी। वह चाहने पर भी बैक मिरर पर से अपनी नज़र हटा न पाई थी। कार को एक तरफ पार्क करके मसूर को बैक मिरर से अपनी ओर आते देखती रही। मसूर, रूप की कार के पास आने लगा। वह दरवाज़ा खोलकर बाहर निकली, उसकी ओर मुड़ी और कहने लगी–

"सुनिये!"

मसूर रुककर खड़ा रहा।

"आप कहाँ जाएंगे?"

"आप चलेंगी?" जवाब देने की बजाय मसूर ने सवाल किया था। वह लम्हे के लिये ठिठकी थी, फिर दूसरे लम्हे न जाने किस यक़ीन के तहत कहा था– "जी।"

मसूर ने फ्रन्ट सीट पर बैठते हुए कहा था– "फ्रेयर हॉल।"

रूप ने गियर बदलकर क्लच पर से पैर हटा दिया था। गाड़ी के बदलते गियर के साथ बातों का गियर भी बदलने लगा।

"मेरा नाम रूप है।"

"मैं मसूर हूँ! तस्वीरें बनाता हूँ।" कुछ रुककर फिर कहा– "जानकारी बेचा करता हूँ।"

"मसलन....?"

"कितने ही डायरेक्टर्स की सीरियल्स की लाइटिंग और ख़ूबसूरत फ़्रेमिंग में मेरी आँख का सौंदर्य शामिल है। कुछ नाम वाले किरदारों के अहम परिदृश्य मेरी फ़ोटोग्राफी की पैदाइश हैं।"

"फ्रेयर हॉल ही क्यों चल रहे हो?"

"बहार के फूलों की पहली नुमाइश है।"

"वहाँ फ़ोटोग्राफी करोगे?"

"नहीं, तवील नाटक की चरमावस्था वाले सीन के लिए कैमरा स्थापित करने के लिये पहले से परियोजना करनी है।"

"आप मुझसे नहीं पूछेंगे कि मैं क्या करती हूँ?"

"मेरा विचार है आप प्रसाधिका (beautician) हो।"

रूप अविश्वसनीय निगाहों से मसूर को घूरने लगी।

"इस तरह क्यों देख रही हैं?"

"आपने कैसे जाना?"

"आपकी गाड़ी की विंडस्क्रीन के कोने पर चिपके हुए स्टिकर को देखकर।"

"ओ.... हो..." रूप तनाव मुक्त हँसी हँसते हुए कहने लगी– "आप ज़ाहिरी तौर पर इतने हाज़िर दिमाग़ नज़र नहीं आते जितने हो।"

"जिसे आप हाज़िर दिमाग़ी समझ रही है, वह तो मेरे व्यवसाय का हिस्सा है।"

"मेरे ख़याल से आप की उम्र मुश्किल से तीस साल होगी।"

"पर मेरा तजुर्बा आपकी उम्र से दुगुना है।" बात कहने के दौरान मसूर ने उसके चेहरे पर लहराती दूधिया लट की ओर देखा और फिर विंड स्क्रीन में देखने लगा था।

वह तमाम दिन रूप, ब्यूटी पॉर्लर को अपने सहयोगी के हवाले छोड़कर, शहर की गगनचुंबी इमारतों, बाज़ारों, बगीचों, पटरियों को बदलते कोणों की रोशनी में मसूर की निगाह से देखती रही और हैरान होती रही। पैंतालीस सालों से रूप ने अपने शहर को इतना अलग, इतना हसीन पहली बार देखा था। उसे पहली बार अहसास हुआ था कि रंगों का, रोशनी से कितना गहरा संबंध है। कितने थोड़े-थोड़े समय में भी परछाइयों का बढ़ना और घटना, शहर के बाज़ारों और बस्तियों के मूड बदलने में अपना असर दिखाता है। रूप को शहर की अलग-अलग बस्तियों और बाज़ारों का निरीक्षण करते अपनी प्रोफेशनल ज़िंदगी में आए कितने ही चेहरे यादों में आते रहे। उसने सोचा – 'कुछ चेहरे सरसब्ज़ बागों की तरह होते हैं, कुछ ऊँची इमारतों की तरह, कुछ मस्जिदों जैसे पाक, तो कुछ कच्ची मिट्टी से जुड़े हुए सादा मगर पुरकशिश। नेपियर रोड की खिड़कियों को देखते उसे ऐसे कितने चेहरे याद आ गए थे जिनके चेहरों को मेकअप करते औरत होने के बावजूद उसने अपने वजूद में ख़ून के प्रवाह को तेज़ होते हुए महसूस किया था।

उसी शाम मैरियट में बैठकर कॉफ़ी और सिगरेट पीते हुए मसूर ने रूप के चेहरे पर झूमती सफ़ेद बालों बाली लट को उँगलियों में पकड़ कर उसके नयनों में दूरबीन से देखते हुए कह दिया–

"तुम कोई ख़्वाब तो नहीं हो?"

रूप, मसूर के सवाल से ज़्यादा उसके लहजे की मासूमियत पर माँ की तरह मुस्करा उठी थी, जिसकी छाँव में खाट रखकर उसकी माँ बीड़ी के कश लेकर, पड़ोस की औरतों के साथ कचहरी करती थी और वह उसके पास बैठ कर उस धुएँ में से माँ की साँसों और उसके जिस्म की खुशबू को अपने सीने में संजोता था।

रूप, कॉफ़ी का मग टेबल पर रखकर पता नहीं कौन सी सोच में खो गई थी। मसूर ने अपने दोनों हाथ रूप के हाथ पर रखकर धीरज के साथ कहा था–

"रूप, मुझसे शादी करोगी?"

रूप के सर से बिजली की गड़गड़ाहट जैसे पार होकर पाँव के तलवों से निकल कर कॉफी हॉल के कालीन में ग़ायब हो गई थी। वह कुछ देर टेबल पर रखे गुलदान के फूलों की ओर बिना सोच के देखती रही और फिर असामान्य हँसी हँस दी।

रूप को उस पल अपने वो दोनों पति याद आए थे, जिनमें से पहले वाले ने उसे इसलिये छोड़ दिया था, क्योंकि वह उसे बच्चा नहीं दे सकी थी और दूसरे ने उसके साथ इसलिये शादी की थी क्योंकि उसकी पहली पत्नी, बच्चे के जन्म के बाद गुज़र गई, जिसे संभालने के लिये एक अच्छी माँ की ज़रूरत थी। बच्चा, जो ज़हनी तरह से असामान्य पैदा हुआ था, उसे रूप अपनी ज़िन्दगी का मक़सद समझकर पालती रही, पर आख़िर वह बच्चा भी दस साल की उम्र का होकर उससे जुदा हो गया था। ऐसी हालात में रूप ज़हनी दबाव का शिकार बन गई थी। उन दिनों रूप को क़ुदरत से हर वक़्त एक ही शिकायत रहने लगी थी कि आख़िर उसने इस मासूम बच्चे के पालन में कौन सी कमी की थी जो वह सहारा भी उससे छीना गया था, जो रूप की ख़ुशियों और व्यस्त रहने का सबब था। रूप की बच्चे के लिये इतनी चाह देखकर, उसका दूसरा पति भी उससे दूर होकर दूसरी औरतों में

व्यस्त रहने लगा था। हर वक्त मानसिक दबाव की शिकार हुई औरत के साथ रह नहीं सका। रूप को उसके भाइयों ने वापस लंदन बुला लिया। लंदन पहुँचकर रूप धीरे-धीरे सामान्य लाइफ शुरू करने के लिये 'बूट्स' के मॉल में कास्मेटिक शॉप में नौकरी करते हुए उसने ब्यूटिशन का कोर्स पूरा किया और दोबारा पाकिस्तान आकर मेन तारिक रोड पर ब्यूटी पॉर्लर खोला था। आते ही रूप ने अपने पार्लर के हवाले से कराची में बेमिसाल फ़ैशन शो करवाकर शहर की पॉश सोसाइटी में अपनी पहचान बना ली। एक साल में ही मुल्क के जानी-मानी अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में छपने वाली मॉडल का मेकअप उसकी ही मेहरबानी से पत्रिकाओं की ख़ूबसूरत छवि बनने लगी। रूप के लिये व्यस्तता जीने का बहाना बन गई। वह बिना आराम के यूँ ही जीना चाहती थी, पर मैरियट के कॉफ़ी हॉल में अट्ठाइस साल के गबरू नौजवान के वाक्य ने एक बार फिर रूप को अशांत कर दिया। उसे मसूर की नीम दीवानगी में प्यार से पाली अपने दूसरे पति की औलाद के एबनार्मल जुनून की झलक दिखाई दी थी। लम्हें के लिये उसने सोचा था- वह अगर जवान होता तो दुनिया को मसूर की दृष्टि जैसा सुंदर ही देखता।

लम्बी साँस लेकर रूप ने सिगरेट को ऐश-ट्रे में फेंक दिया और नेल पॉलिश लगे नाख़ूनों से टेबल पर बेख़्याली में जलतरंग बजाने लगी थी।

वह रात, मसूर उसके बेडरूम में सोया था। रूप उस रात मसूर में मौजूद मर्द का समस्त रूप देखती रही थी। एक मज़बूत नौजवान, एक परिपक्व शख़्स, और एक बिल्कुल ही मासूम बालक जो आख़िर में उसके वजूद में सिकुड़ता रहा।

सुबह हुई। मसूर उसकी सफ़ेद लट को चूमकर चला गया था। रूप ने समझा, अब मसूर नहीं आएगा, पर ऐसा नहीं हुआ। वह तब तक आता रहा जब तक रूप ने उसके साथ शादी नहीं की थी। उस रात को मिलाकर मसूर के साथ गुज़ारी एक हज़ार पचानवे रातों और दिनों में रूप ने उसके हज़ारों पहलू देखे थे, पर उनमें कई मंजरों में मदरलेस चाइल्ड वाली झलक पाई थी। यही कारण था कि तन्हाइयों में वह रूप को मासूम बच्चे की तरह बेज़ार करता रहता था। उसके अधिक मित्र शहर के बाग़ों में दौड़ते गिलहरी कौवे, बत्तख और पड़ोस के कुत्ते थे। रूप जब जब भी मसूर के साथ उन

बाग़ों में गई थी तो उसे हमेशा महसूस हुआ, जैसे ये सभी पक्षी और नन्हें जानवर उसकी राह तकते रहे हों! उसे देखते ही शाखों से उतरकर, बेझिझक आकर उसके आस-पास फैल जाते, और मसूर लिफ़ाफ़ों में लाई चीजें उनकी ओर बढ़ाता रहता था। यह सब तो अपनी जगह पर मसूर बाग़ के कुछ पेड़ों से ताल मिलाकर, हँसते हँसते उनसे बतियाता। रूप को इस बात पर तो यक़ीन नहीं हो रहा था, जब पेड़ की शाखों से कुछ परिंदे उड़कर, मसूर की खुली हथेली पर रखी ब्रेड के टुकड़ों को चुगने लगे थे।

रूप ने बीते तीन सालों में यह भी साफ़-साफ़ महसूस किया था कि शहर के पक्षी और जानदार जानवरों में जितने मसूर को प्यार करने वाले थे वह खुद भी उनके बीच में खुश रहता था, उतना ही वह रोज़ मिलने वाले आदमियों और मेहमानों से घबराता और कतराता था।

ख़्वाब से अचानक चौंक कर उठने वाली रात को रूप ने उसे बेडरूम से बाहर जाते देखा था। उसकी सोच में विघ्न डालने की बजाय कुछ हल्के से कहते वह चादर ओढ़कर सो गई थी। उसे लगा कि मसूर ख़्वाब में अपने टी.वी. नाटक के सीन को किसी नए कोण में फ़्रेमिंग करते हुए जाग उठा होगा, क्योंकि वह जब भी किसी नाटक पर काम करता था, तो नींद में उसकी सोच अपने सतत काम के बारे में ख़्वाब की सूरत अख़्तियार कर लेती थी। वह सचेत जागरण व निद्रा के बीच में बेडरूम से निकलकर स्टडी रूम में चला जाता था, और अपनी निजी डायरी में ख़्वाब में उभरी अद्‌भुत कल्पना लिख देता था। सुबह होने के बाद यह बात उसे याद नहीं रहती थी। मसूर अगस्त में बरसते आसमान में धुले हुए सितारों के झुरमुट तले, कमीज़ को तार पर टाँगने की बजाय, हाथों में मरोड़कर, बारिश से भीगे टेरेस पर आकर रॉकिंग चेयर पर बैठ खुद भी छलक पड़ा था। समुद्री हवा रात की रानी की महक से नहाई, पता नहीं मसूर के सचेत ज़हन को किस दिशा में ले गई थी। उसकी सिसकियों से रॉकिंग चेयर भी आगे पीछे हिचकोले खाने लगी थी।

ऐसा बहुत कम हुआ था, कि ख़्वाब से जागकर सितारों भरे आसमान के नीचे आकर सिसक उठा हो, पर उस रात पता नहीं उसने ख़्वाब में ऐसा क्या देखा जो उसे निरंतर रुलाता रहा।

कितनी देर मसूर और रॉकिंग चेयर रोते रहे, पर उसकी सिसकियाँ कम होने की वजह रॉकिंग चेयर ने भी हिचकोले खाने बंद कर दिये।

सुबह जब वह नींद से जागा था तो रूप ने निचले होंठ को बीच रंग भरती भूरे रंग भी लिपस्टिक वाला हाथ रोककर, ड्रेसिंग टेबल के आइने से उसकी ओर देखते हुए करुणामयी मुस्कान से पूछा था– "प्यारे, रात तारों की तपिश में तुमने छलके ख़्वाब से नम कमीज़ को सुखाया था, या कमीज़ पर छलका हुआ ख़्वाब तुम्हें सुखाने में कामयाब हुआ था?"

"क्यों..... रात फिर कुछ हुआ था क्या?" मसूर ने अज्ञानता से ड्रेसिंग टेबल के आईने में नज़र आते रूप के मेहरबान चेहरे की ओर रिक्त चेहरे से तकने लगा।

"नहीं! रूप ने होंठ के बाक़ी हिस्से को भूरे रंग से रंगते हुए कहा – "रात मैंने ख्वाब में देखा था, कोई ख़्वाब तुम्हारी कमीज़ पर पानी की तरह छलका था और तुम नींद से जागकर अपनी ख़्वाब से भीगी कमीज़ को उतारकर सुखाने के लिये टेरेस की ओर चले गए थे।"

"अच्छा.....!!" वह पलंग पर पालथी मारकर अजब से रूप को देखने लगा था। रूप ने कॉर्नर टेबल से चाबियों का गुच्छा उठाया, दरवाज़े की ओर जाते हुए कहती गई– "नाश्ता टेबल पर रखा है। चाय बनाकर पी लेना, अगर थर्मस में रखी हुए पसंद न आए तो! कार छोड़कर जा रही हूँ, आज आपको रिकार्डिंग के लिये ग्यारह बजे पहुँचना है और इस वक़्त दस बजे हैं। जाने के पहले फ्लैट के दरवाज़े को खुला नहीं छोड़ना.... प्लीज़, प्लीज़, प्लीज. ...." कहते हुए रूप बेडरूम से निकल गई थी।

मसूर बेड से उठा, तैयार होकर डाइनिंग टेबल के पास आया। दो उबले अंडों में से एक पर काली मिर्च और नमक छिड़ककर रात वाले ख़्वाब के बारे में सोचने लगा। उसने अंडा खाकर ख़त्म कर दिया था, पर ख़्वाब उसके चित्र में नहीं आ पाया। उसने बाथरूम में शेव करते, शॉवर लेते, कपड़े बदलते हुए उस ख़्वाब को याद करना चाहा। अंडा ख़त्म करते उसने संतरे का जूस ग्लास में भरा, पर फिर जाने क्या सोचकर जूस का ग्लास वापस रखकर, सादे पानी का ग्लास भरकर जब लबों से लगाया तो उसे महसूस हुआ जैसे ख़्वाब ज़हन में आने की बजाय ग्लास में उतर आया हो। पर पानी का ग्लास

ख़ाली हो जाने के बाद भी प्यास जैसे उसकी ज़बान पर तपती रेत की तरह उड़ने लगी थी और ख़्वाब ज़हन की सहरा में सरसब्ज़ हरित भूमि बनकर उसका मज़ाक उड़ाता रहा।

मसूर चाहता था कि किसी तरह ख़्वाब को ग्लास में उतार ले। उसने सोचा– 'कभी-कभी कुछ याद करने के बावजूद कुछ भी याद नहीं आता है तो दिमाग़ को ज़बान के साथ एक पदग्रहण (कंठ) भी हो जाता है, जिसमें याद न आने वाली बात, प्यास की तरह काँटा बनकर चुभने लगती है, और यह चुभन याद करने की ख़्वाहिश को और बढ़ा देती है।

ऐसा कम ही हुआ होगा कि उसके ज़हन में एक आंकड़ा उत्पन्न हुआ हो और वह उसी नपे-तुले ख़्वाब के व्याख्यान को ग्लास में न उतार पाया हो। पर कल रात वाले ख़्वाब ने उसे ज़्यादा परेशान कर रखा था।

क्या था.....? क्या था....? क्या था....? मसूर ने याद करने की कोशिश में संतरे की जूस के घूँट भरे। अचानक डायरी का ख़्याल आते ही समूरी जूस पीकर ख़ाली ग्लास रखा। स्टडी रूम में आकर डायरी में ताज़ी तारीख़ के पन्ने पलटे और कुछ खाली पन्नों को देखने लगा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि ख़्वाब में से जागने के बाद वह हमेशा की तरह स्टडी रूम में आकर अपना ख़्वाब क्यों नहीं लिखा था। वह बालकनी से स्टडी रूम में से निकल कर टेरेस पर आ गया। आसमान मटमैले बादलों से लदा था। सातवें फ्लोर से विशाल समुद्र का मंजर और शोर हमेशा की तरह वही रहा। मसूर ने समुद्र से निगाह हटाई तो रॉकिंग चेयर की ओर उसकी नज़र गई, जहाँ उसकी कमीज़ पड़ी थी। तभी उसे कुछ-कुछ याद आया। उसने झट से अपनी कमीज़ उतार दी थी और.... और से ज़्यादा उसके ज़हन में कुछ नहीं आ पाया था। तब बेचैनी से उसने गर्दन को हिलाया और कमरा क्रास करते ड्राइंग रूम में रखा अपना ज़रूरी सामान उठाया, दरवाज़े के पास टंगी फ्लैट और कार की चाबियाँ जेब में डालीं और दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आया। उसने फ्लैट का दरवाज़ा बंद करने के पहले एक बार जेब में चाबियाँ हैं, इस बात की तसल्ली की और दरवाज़ा बंद करके दो बार हिलाकर यक़ीन कर लिया कि इन्टरलॉक मुकम्मिल तरह से बंद हो चुका था। लिफ़्ट से नीचे पहुँचकर पार्किंग लॉट में खड़ी कार की तरफ़ बढ़कर ड्राइविंग करके लोकेशन

पर पहुँचने तक उसका दिमाग़ रोड की तरफ़ कम ख़्वाब की तरफ़ ज़्यादा था।

उस वक़्त रात के तीन बजे थे, शायद जब ख़्वाब के बीच से वह जाग उठा था उसने सोचा– रात के उस पहर में अक्सर ख़्वाब आते हैं। रात का यह पहर कितना प्रभावी होता है.... वीराने में अंधी गहरी गुफ़ा जैसा.... किसी धनाढ्य के भीतर जैसा पुरइसरार, हठीला, बेअंत गहरे राज़ों से भरा हुआ। रात के उसी पहर में आने वाले ख़्वाब दिमाग़ की भीतरी तहों में उतर जाते हैं, जो सुबह को हज़ार चाहने पर भी याद नहीं आते। ये वही पहर हैं, जिसमें चोर रोज़गार के लिये तैयार होकर निकलते हैं, और सिन्ध के गावों में आशिक महबूबाओं से मिलने के लिये.... यही पहर चौकीदारों के इम्तहानों का होता है। उस पहर में तो सितारों पर भी नींद की मदहोशी छाई रहती है, पर इस पहर में ये कौन सा ख़्वाब था जो.... मसूर सोचते-सोचते शहर के चौक, सिग्नलस लाँघता रहा। इस दौरान कई जगहों पर क्रास करती गाड़ियाँ, सामने आती ट्रैफिक हॉर्न बजाकर उसकी गलत ड्राइविंग का उसे अहसास दिलाती रही।

रात के नौ बजे थे। रूप ने डाइनिंग टेबिल पर रखे, फ्रूट बासकेट में से सेब निकालकर काटना चाहा। फ़ोन की घंटी बजी, उसने छुरी और सेब टेबल पर रखकर फ़ोन उठाया।

"हैलो.... जी, जी.... मिसिज़ मसूर ही बात कर रही हूँ।"

उसके बाद रूप ने दूसरी ओर से जो सुना वह उसे झकझोरने के लिये काफ़ी था। वह रिसीवर को रखने की बजाय दोनों हाथों में पकड़े, छाती से लगाकर ड्राइंग रूम के बीचोंबीच पालथी मारकर बैठी रही थी, जैसे कोई घर में घुस आए दहश्तगारों से बचने के लिये, घर को कोने में सिमट कर बैठने के बावजूद असुरक्षित महसूस करता हो।

किसी ने घर की कॉल बेल बजाई थी। एक बार, दो बार और कई बार, तब रूप को अहसास हुआ था कोई दरवाज़े पर मौजूद है। उसने खौफ़ की चादर ओढ़कर दरवाज़ा खोला था, सामने मसूर का डाइरेक्टर दोस्त गर्दन झुकाकर खड़ा था।

"कैसे हुआ?" रूप ने बात करने की कोशिश की।

वह जवाब देने की बजाय, रूप को सहारा देकर नीचे ले आया... अब उनकी गाड़ी सिविल अस्पताल की ओर दौड़ने लगी।

"वह जैसे ही आया था, कुछ बेचैन सा था।" डाइरेक्टर ने कहा– "उसने काम तो हमेशा की तरह मुकम्मिल रूप में किया, पर बात बहुत कम शब्दों में की। साढ़े आठ बजे हमने पैक अप किया था। मैंने उससे बैचेनी का सबब पूछा तो हँसकर कहा– 'ख़्वाब गुम हो गया है....' लोगों ने बताया कि बिल्ली के बच्चे को बचाते उसकी गाड़ी आउट ऑफ कंट्रोल हो गई थी।

सिविल अस्पताल पहुँचकर काँपते हाथों, थरथराते होठों और लुढ़कते आँसुओं से रजिस्टर पर हस्ताक्षर करते रूप को लगा जैसे वह अपने पति की नहीं, पर अपने जवान बेटे की लाश लेने आई हो जो उसके जीने का आख़िरी सहारा था। ❑

जलते अंगारे

◆सहर इमदाद

रात शब बारात हुई। उसने शीरा और पूरी बनाई। ख़तिमा देकर आस-पड़ोस में बाँट दिया। आज उसने हर काम अकेले ही किया था, बिल्कुल ही मौन की चादर ओढ़कर बड़े ही धीरज से किया। उसकी यह चुप्पी, उसके अंदर की चुप्पी, मौन और सन्नाटे की प्रतिध्वनि थी और आज उसकी बड़ी बेटी उसकी आवाज़ का इंतज़ार करती रही थी। नीना अपनी माँ की इस आदत से बख़ूबी वाक़िफ़ थी- घर का काम करते चिल्लाकर आवाज़ देने की आदत। वह काम करते बार-बार किसी न किसी को बुलाती रहती थी, ख़ास करके नीना जब घर में रहती थी, तब वह नीना को ही बुलाती थी।

"नीना! मुझे बरनी में शक्कर तो भरकर दे।"

"नीना! दौड़कर आओ, मुझे थोड़े बादाम पिस्ते तो काटकर दो।"

"नीना, ओ नीना! बेटे यहाँ आओ- चाशनी तो चख कर बताओ।"

"नीना...."

"नीना.... नीना...."

और नीना आख़िर उन आवाज़ों से तंग आकर कहती थी, "बस अम्मा, मैं और मेरा कम्प्यूटर दोनों आते हैं शक्कर टेस्ट करने के लिये।" और वह मुस्कराकर प्यार से कहती, "नीना, मज़ाक मत कर, पड़ोसी सुन लेंगे तो कल की अख़बार में मेरी शुगर से ग्रस्त होने की ख़बर मुख्य अख़बारों में लग जायेगी और कल सारे पड़ोसी मेरा हाल जानने के लिये नुस्ख़ों के साथ आकर घर में जमा हो जायेंगे।"

पड़ोसियों को इकट्ठा करना तो दूर की बात, उसने तो अपने बच्चों को भी आज रसोईघर में इकट्ठा नहीं किया। उसने चुपचाप अकेले ही सब

काम निपटाया, बिना किसी को आवाज़ दिये, बल्कि उसे महसूस हुआ था कि आज काम कुछ ज़्यादा जल्दी, ज़्यादा अच्छे ढंग से हो गए हैं। उसकी काम वाली ने तो बस आख़िर में आकर फक़त पड़ोसियों में प्रसाद बाँटने का काम आसान किया। बाई, जो दरअसल ख़ुद अपनी ईद लेने आई थी, उसके साथ भी उसने ज़्यादा खींचतान नहीं की, बस ले देकर उसे रवाना कर दिया।

उसने बाहर बाहर बेहद 'कूल लुक' दी, पर उसके अन्दर में अंगार भभक रहे थे। उसने उन अंगारों की तपिश अपने पति और बच्चों तक नहीं जाने दी इसलिये अपने ऊपर बर्फ़ की तहें चढ़ाती रही वह। परत-दर-परत चढ़ी बर्फ़ की पहाड़ी के नीचे अपने भीतर तक ज्वालामुखी को छुपाए चल रही थी। बिल्कुल 'कूल' नज़र आने वाली वह आस पड़ोस में बाँटकर चौकीदार और बाई को ईद देकर फ़ारिग हुई। उसने अपने घर वालों के लिये शीरा 'हॉट पॉट' में डाला, सफ़ेद नैपकिन से ढकी हुई प्लेट में पूरियाँ सजाईं। एक प्लेट में बेसन के हलवे के टुकड़े रखे। सच्चे घी में लसुन का बघार देकर आलू की सब्ज़ी और हरे मसाले का रायता उसने उठाकर डाइनिंग टेबल पर रखे, और प्लेटें भी लाकर रख दीं। घर के एक एक सदस्य को उसने ख़ुद जाकर बुलाया।

उसका ससुर अपने कमरे में नमाज़ पढ़ रहा था, इसलिये वह नीना और मीना के कमरे की ओर चली गई। नीना कम्प्यूटर पर कोई गेम खेलने में तन्मय थी और छोटी गोल-मटोल मीना की आँखों तक लटक रहे कट बालों के बीच में से गेम देख रही थी। माँ ने उनके कमरे में आकर प्यार से नीना की पीठ थपथपाते कहा- It is time to close your computer. (यह कम्प्यूटर बंद करने का समय है।)

उसने छोटी मीना के चेहरे से बाल हटाए, झुककर उसे चूमा और टेबल पर रखे सुंदर रंगारंगी रबर बैंड से उसकी दो छोटी सी 'पोनी टेल' बनाईं। कमरे के कुशन ठीक किये, चादर खींची, बाहर निकलते, उसने एक बार फिर दोनों को खाने के लिये आने के लिये ज़ोर दिया।

"नीना मीना, तुम दोनों बस पाँच मिनट में डाइनिंग टेबल पर आओ।"

बेटा सारंग, पिता की कराची से लाकर दी हुई फैंडर की तारों का सेट खोलकर बैठा था और गिटार की तारों को फ़िट करने के काम में व्यस्त था।

वह फ्लोर कुशन पर उसके बाजू में बैठ गई।

"सारंग, क्या सभी तारें बदल रहे हो?"

"हाँ माँ, सभी नई तारें लगाई हैं, पुरानी संभाल कर रखूँगा किसी भी वक़्त कोई तार टूट गई तो काम आ जाएगी।"

"बस बेटा- अब यह बाद में बैठकर करना, पहले आओ तो सब मिलकर खाना खाएँ।"

"बस माँ, यह आखिरी E तार सेट करके आता हूँ।"

"बस बेटा, पाँच मिनटों में टेबल पर आओ, और दादा साईं को भी ले आना।"

वह अपने बेडरूम में जाती है, दरवाज़े के पास रखे सोफ़ा पर उसका पति अपनी डायरी में कुछ हिसाब किताब करने में व्यस्त है। वह उसके कंधों के पास छूकर गुज़रते हुए कहती है- "डार्लिंग, खाना तैयार है- चलो।"

वह चुनरी उतारकर पलंग के किनारे रखती है और श्रृंगार मेज़ के आड़े खड़े होकर ब्रश से अपने बाल संवारती है। अपने जिस्म का एक एक अंग ध्यान से देखते हुए बाथरूम में चली जाती है, हाथ मुँह धोकर, फ्रेश होकर बाहर आती है, आईने के सामने खड़े होकर, पाउडर हाथ में छिड़ककर दोनों हाथों से रगड़कर गर्दन पर लगा कर और फिर वही हाथ अपने चेहरे पर घुमाती है, ज़रा सी वैज़िलीन उँगली पर लेकर लबों पर लगाती है, हैंडलोशन हाथों में लेकर, दोनों हाथों को खुशबू से रगड़ती है, पलंग से चुनरी लेकर सीने पर फैला लेती है तो उसकी नज़र पति की ओर जाती है जो डायरी बंद करके उसे गहरी नज़रों से घूर रहा है। वह दरवाज़े की ओर बढ़ती है और सोचती है कि जब वह उसके क़रीब से गुज़रेगी तो वह ज़रूर कोई मस्ती करेगा। वह हवा के झोंके की तरह उसके पास से गुज़रती है, तो उसी पल वह उठकर खड़ा होता है और उसे बाँहों से पकड़ झटके से अपनी ओर खींचता है और आगोश में भरते हुए कहता है- "अच्छी लग रही हो।"

वे दोनों बेडरूम के दरवाज़े के बाहर आकर एक दूसरे के हाथ से आहिस्ते से अपना अपना हाथ अलग करते, उँगलियों के पोरों तक एक दूसरे को छूते, हाथ अलग करते हैं- और एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कराते, डाइनिंग टेबल पर एक दूसरे के आमने-सामने बैठते हैं। पति बच्चों के नाम ले लेकर पुकारता

है– "नीना, मीना, सारंग आओ।" सारंग आया तो उसे दादा को लाने के लिये भेजा।

सब खाना ले लेते हैं। वह अपनी प्लेट में अपनी पसंद का बेसन का हलवा लेती है तो अचानक उसे सुबह वाली वार्ता याद हो आई और उसका सारा जिस्म जैसे ठंडा होता गया। वह उस बात को भूलने की कोशिश करती है और टेबल पर सभी के साथ बात करने में बिज़ी हो जाती है। बच्चों के स्कूल की बातें, सारंग की गिटार की ध्वनि और सुरों की बातें, दादा की आज की ख़ास ख़बरों की बाबत टिप्पणियाँ और ऐसी कई बातें पूरे परिवार में एक दूसरे की छोटी–छोटी खुशियों में मिलकर बाँटीं। इस तरह वह दिन एक ख़ूबसूरत पारिवारिक समारोह बन गया।

टेबल से सभी उठते हैं तो नीना और सारंग बर्तन उठाने में उसकी मदद करते हैं। नीना टेबल साफ़ करके बर्तन माँजने में लग जाती है।

तब तक सारंग अपनी ख़र्ची में से खरीदे पटाखे, लड़ियाँ, बम, बिच्छू, साँप, अनार सब लेकर आता है। दादा, बाप और बेटा, छोटी मीना समेत आंगन में जाकर पटाखे जलाते हैं, बम फोड़ते हैं, लड़ी जलाते हैं। नीना भी काम से फ़ारिग होकर उनकी ख़ुशी में शामिल हो जाती है।

पटाखों की आवाज़ और धमाके उसके ज़हन को एक बार फिर डावांडोल करते हैं। उसके भीतर का ज्वालामुखी विस्फोटित होना चाहता है। वह उनसे बचना और भागना चाहती है। एक जगह नमाज़ बिछाकर, इबादत की रात का हक़ अदा करने के लिये नफिलु पढ़ते, बाहर बमों के विस्फोट.... उसके भीतर जैसे एक तेज़ाब सा असर पैदा कर रहे थे।

उसका बॉस अमानुषता के आवरण में निरंतर उसकी ओर बढ़ रहा है। अपने बचाव में वह हाथ आई लाठी से उसपर नाकाम वार करती है। वह गिरकर फिर उठता है, हर वार को बर्दाश्त करके उसको और भी ज़्यादा जोश और वेग से बढ़ता है।

वह हमेशा उसे उकसाने वाले वाक्यांश कहता रहता था, "आपका पति बहुत भाग्यवान है, जो उन्हें तुम जैसी पत्नी मिली है।" या "I envy your husband!" (मुझे तुम्हारे पति से जलन होती है।)

कभी उसे घूरता, कभी घिनौनी हरकतें करता, पर वह हमेशा उन बातों

को नज़र अंदाज़ करती रही, सुना अनसुना करती रही, देखा अनदेखा करती रही। पर आज, आज तो वह कमीना सब लक्ष्मण रेखाएँ पार कर गया। उसे अपने ऑफिस में एक खास विषय पर विचार-विमर्श करने के लिए बुलाया था। बातचीत ख़त्म करके, चाय की आख़िरी घूँट भरकर, वह जैसे उठी, वह अचानक फुर्ती से उठा और उसे बाँहों में जकड़ने की कोशिश की- "आइ अम डाइंग टू स्लीप विथ् यू हनी।"

और इसने अपने समस्त बल से अपनी बाँह छुड़ाकर बिजली की रफ़्तार से एक ज़ोरदार थप्पड़ उसके गाल पर दे मारा और तेज़ी से दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आई।

वह अपनी सीट पर पहुँची तो पूरी तरह से हाँफ रही थी। उसे लगा कि उसकी रगों में ख़ून की जगह गर्म लावा बह रहा है। गुस्से में उसके हाथों की मुट्ठियाँ भिंचती रहीं और उसने अपनी दोनों मुट्ठियाँ ज़ोर से टेबल पर दे मारीं और उन पर अपना माथा टेक दिया। कुछ देर बाद उसने सर ऊपर उठाया, थर्मस से ठंडा पानी गिलास में भरा और घूँट भरकर पी गई। जिस्म का तनाव कम करने के लिये उसने बदन को ढीला छोड़ा.... फिर एक ग्लास पानी और पिया। ड्राअर खोलकर उसने कुछ कागज़ निकाले- पेन लिया और अपना सेक्शन बदलने के लिये एक दरख़्वास्त लिखी। बीच बीच में वह ठंडा पानी पीती रही। एक और पन्ने पर उसने 'शॉर्ट लीव' के लिये नोट लिखा और बेल बजाई। चपरासी आया तो उसे वो लिखे कागज़ दिये। उसने अपना शोल्डर बैग और लंच बाक्स उठाया और ऑफ़िस के बाहर निकल आई।

इतनी बड़े, रौशन और वातानुकूलित ऑफ़िस में आज उसे घोर अंधेरा, घुटन और व्यथा का अहसास हुआ था। उस पल उसके मन में सिवाय नफ़रत के कुछ भी न था। नफ़रत और क्रोध की उस आग की यातना ने उसे बेजान कर रखा था। वह तमाम दिन जलती, सुलगती रही, लम्हा लम्हा जीती और मरती रही थी। सारा दिन उस तपिश जो झेलते झेलते उसका अंग अंग चूर हो चुका था।

वह शाम को उठी तो यह सोचकर उठी कि वह उस वारदात के बारे में नहीं सोचेगी। उसने स्नान घर में क़दम रखा, शावर से बहते पानी की ठंडे

फुहारे जैसी धार उसके तन और मन पर से थकावट की हर परत उतार चुकी थी। वह साफ़ आईने की तरह दीप्तिमान लगने लगी। फिर उसने धीरज के साथ घर के सारे काम ठहराव की गति से पूरे किये। उसमें जितनी देर खड़े होने की शक्ति थी वह नफ़िलु पढ़ती रही। पूरा होने के बाद उसने आँखें मूँदकर सलामती के लिये हाथ दुआ के लिये उठाए।

बाहर आंगन में ख़ामोशी थी। उनके कमरे से किसी पुरानी क्लासिक मूवी के डायलॉग रोशनी की लकीर के साथ बाहर तक आ रहे थे। समस्त वायुमंडल में गिटार की तान की झनकार थी। ❑

सियासत, मीडिया और अजीब बू

◆तनवीर जोनेजो

कालीन सी दरी पर सफ़ेद चुनरी, जिस पर गुलाबी फूल गुंथे हुए थे, सर पर ओढ़े वह ख़ुदा के दर मिन्नत कर रही है, नाज़ुक निर्मल से हाथ उठाकर उस परम दयालू रब से कुछ माँग रही थी।

मुहब्बत की मंज़िल, हमसफ़री का साथ.... प्यार का चंदोवा :

"ऐ मेरे पाक परवरदिगार.... वह जैसा भी है.... मुझे बहुत प्यारा है. ... उसके साथ का हर पल मेरे लिये जन्नत समान है.... आप मुझे उनसे दूर न करें.... ऐ मेरे करीम बादशाह तुम्हारे दर हर बंदा एक खुली किताब है। हर बंदे के भीतर के ख़यालों से आप परिचित हैं.... बंदे की मजबूरियों और कमज़ोरियों की सब जानकारी है तुम्हारे पास.... परवरदिगार मुझे लौटा दो वह अपनी तमाम नेकियों और सच्चाइयों से.... निर्दोषता और निर्मलता के साथ।"

उसके होंठ थरथरा रहे थे, आँखों में आंसुओं की लड़ी थी.... ख़यालों की उड़ान.... तेज़ी से बुलंदियों के साथ विगत काल की ओर जा रही है. .. कुछ यादगार लम्हों के यादगार पल....!

उसका नाम बिलकिश है... और इस वक़्त जिसके लिये ख़ुदा के दर मिन्नत कर रही है वह उसका दोस्त, उसका सहपाठी सलीम है। दोनों बी. ए. के तीसरे साल के विद्यार्थी हैं। बिलकिश में कई गुण हैं..... बात करने की तमीज़ है और कुछ विनम्रता का भाव लिये हुए उसका व्यक्तित्व अपने ढंग का था। उसका परिवार भी इतना संकीर्ण विचारों वाला न था, एक मध्य वर्गीय कुटुंब है जिसमें एक तरफ़ दस्तूरों का रक्षण किया जाता तो दूसरी तरफ़ वक़्त की आवश्यकताओं की भी पूर्ति की जाती। उसकी माँ भी पढ़ी लिखी नौकरीशुदा औरत है। वह विख्यात अस्पताल में डॉक्टर थी और उसके पिता

भी एक डॉक्टर थे।

हैदराबाद में सिंधियों की बस्ती कासिमाबाद में उनका चार सौ गज़ का एक शानदार बंगला था। ज़िंदगी ने उसके साथ बहुधा अच्छाइयाँ बख्शीं, बस! अगर थोड़ी कुछ कमी थी तो उसके भीतर में पनपती हीन भावना का अहसास, या किसी हद तक माँ की नौकरी के सबब उनकी मुहब्बत पाने की कमी। पर उसकी यह कमी भी उसकी दादी ने पूरी कर दी थी। फिर भी कम पढ़ाई और कम सलाहियत के कारण उसकी अपनी ही बुनी हुई विचारधारा थी या नाटकों और फिल्मों से प्राप्त आत्मदया का भाव था, जो उसके ज़हन पर हावी था। इंटर साइंस में अपेक्षित अंक हासिल न करने के कारण यूनिवर्सिटी में दाख़िला लिया था।

सलीम उसका क्लास फेलो था, दादू के गर्वमेंट कॉलेज से इंटर करके यहाँ आया था। बिलकिश की तुलना में उसका परिवार मध्यवर्ग से वास्ता रखता था। उसका बाप एक प्राइमरी स्कूल में हेड मास्टर था। उसे सी. एस. ए. कराकर 'डिप्यूटी कमिश्नर' बनाने का ख़्वाब उसकी आँखों में था। सलीम की शख़्सियत पुरकशिश थी.... कद्दावर.... सुन्दर सुकुमार जवान था। तबीयत में किसी हद तक परिपक्वता की कमी.... पढ़ने में कम चाह.... पर ख़्वाबों की उड़ान कमिश्नरी से भी ऊँची थी।

बिलकिश के साथ मुहब्बत की गाँठें कैसे बंधीं, इस का अहसास दोनों को नहीं हुआ। न पहली नज़र में प्यार हुआ था, और न ही सलीम ने बिलकिश को किसी गुंडे से बचाया था। आहिस्ते आहिस्ते बेख़बरी के आलम में दोनों एक दूसरे के नज़दीक आने लगे.... सलीम के लिये नोट्स तैयार करना, असाइन्मेंट बनाना.... बिलकिश के प्रिय काम थे.... पहले फ़ोन पर बातें होतीं, यूनिवर्सिटी के बारे में, फिर धीरे-धीरे भविष्य में साथ गुज़ारने के रेखा-चित्र शुरू होकर 'हाला नाके' के अयूब रेस्टॉरंट तक पहुँचे।

सलीम अक्सर किसी अनजान ख़ौफ़ का शिकार नज़र आता था, "कहीं अपना ज़िक्र 'प्रेमी जोड़ो' में तो नहीं आ जाएगा? ऐसा ही सवाल एक दिन सलीम ने बिलकिश से किया था।

"नहीं सलीम, हमारी फैमिली काफ़ी आज़ाद ख़्याल की है.... और अम्मा तो तुम्हारी मेरी दोस्ती के बारे में जानती है।" बिलकिश ने उसे ढाढस बंधाया।

बिलकिश जो आत्मदया की परिस्थिति में गिरफ़्तार थी, सलीम के साथ उसके वजूद को आत्मविश्वास मिला था। उसी विश्वास के सहारे वह इस गोल गोल घूमती दुनिया में नाज़ के साथ इतराती थी, खुद विश्वास के साथ चलती थी और उसे यह भी यक़ीन था कि सलीम उसका अपना है। सलीम और उसके बीच में कोई भी समाज की दीवार नहीं है। फिर उसे लगा कि सलीम के ध्यान का केन्द्र-बिंदु कोई और लड़की बनने लगी और सलीम उसके पीछे 'पागलों' की तरह दौड़ने लगा और वह लड़की सलीम का अल्हड़पन देखकर, उसे अपनी बाँहों में जकड़ती रही.... वह कोई और नहीं 'सियासत' थी।

"मैं प्रेशर ग्रुप का अध्यक्ष चुन लिया गया हूँ।" इंटरनेश्नल रिलेशन वाले अनुभाग के पास ऊपर जाती हुई सीढ़ियों पर सलीम ने उसे बताया था।

"सच!" बिलकिश की खुशी की कोई हद न रही थी।

"हाँ.... अब मैं भी लीडर कहलाऊँगा.... मेरे बयान और तस्वीरें अख़बारों में आएँगी।"

"पर सलीम, तुम ध्येय के लिये लड़ना, स्टूडेंट्स की परेशानियों के लिये संघर्ष करना और धरती के दुखों के ख़िलाफ़ जूझना।" बिलकिश ने लंबी साँस लेते हुए उससे कहा था- "सच सलीम, मेरा सर गर्व से बुलंद होगा, मेरे आत्मविश्वास में और भी इज़ाफ़ा होगा।"

"हाँ बिलकिश, मैं चाहता हूँ कि क़ौम के दुख समेट लूँ। स्टूडेंट्स सुकून से तालीम पाएँ। बसों में लटकते हुए नहीं आराम से बैठ कर आएँ जाएँ। खुद छुट्टी लेने के ढंग में बदलाव के लिये संघर्ष करूँगा.... और हाँ.... बिलकिश तुम्हें पता है मैं सियासत में क्यों आया हूँ? इसलिये कि तुम्हारा सर गर्व से ऊँचा हो और वो आदर्श जो तुमने संजोए हैं उन को क़ामयाबी मिले...."

सलीम ने प्यार से बिलकिश का हाथ पकड़ा, पर मैडम को आते हुए देखकर हाथ छोड़ दिया। बिलकिश ने शरारती मुस्कान से उसकी ओर देखते हुए कहा- "बस, इतना सा दिल है। अभी तो लीडर बनने चले थे।"

"मूल्यों की रक्षा भी तो करनी है..." सलीम ने मुस्कराते हुए जवाब दिया।

और फिर सलीम के बयान अख़बारों में छपने लगे। तस्वीरें विभाग की दीवारों पर चिपकने लगीं। अब सलीम कोई आम स्टूडेंट नहीं, एक ख़ास स्टूडेंट था जिस पर हर एक इतराता था, सलाम करता था। सलीम में अल्हड़पन की मात्रा बढ़ने लगी।

"बिलकिश.... आज तुम्हारी सालगिरह है न...." सलीम के हाथ में एक गिफ़्ट पैक था।

"यह देखो... तुम्हारे लिये क्या लाया हूँ?"

"तुम्हारा लाया हुआ ख़ूबसूरत कार्ड भी मेरे लिये सोने से ज़्यादा मूल्यवान होता है।" बिलकिश गिफ़्ट पैक को देखकर कहने लगी।

"पर तुम देखो तो सही।" सलीम ने कहा।

"अरे यह.... यह तो सोने का ब्रेसलेट है।" बिलकिश ने हैरानी से सवाली निगाहें उसकी ओर उठाईं।

"हाँ.....!" सलीम मुस्कराता रहा।

"पर इतने पैसे तुम्हारे पास आए कहाँ से.... सात हज़ार से तो क़तई कम न होगा यह...." बिलकिश हैरान थी।

"पैसों को छोड़ो.... यह बताओ तुम्हें गिफ़्ट पसंद आया न?"

सलीम की आँखों में मुहब्बत का जोश था।

"है तो अच्छा पर...." कुछ चाहकर भी वह कुछ न कह पाई।

सिमेस्टर की परीक्षाएँ नज़दीक थीं। बिलकिश पढ़ाई के साथ सलीम की असाइन्मेंट भी तैयार करने में व्यस्त रही।

"ख़ुदा करे जल्दी परीक्षाएँ हों।" हर स्टूडेंट की तरह बिलकिश भी ख़्वाहिशमंद थी। वक़्त पर परीक्षाएँ हों तो बेहतर, नहीं तो देर के कारण नौकरी पाने में भी स्टूडेंट पीछे रह जाते हैं। 'कायदे आज़म यूनिवर्सिटी' में इच्छुक विद्यार्थी दाख़िला पाने से वंचित रह जाते हैं.... कितनी स्कॉलरशिप रद्द होती हैं और उसके साथ-साथ माता-पिता पर भी आर्थिक बोझ बढ़ जाता है। आम विद्यार्थी एक अनचाही परिस्थिति के शिकार हो जाते हैं।

"हैलो बिलकिश, क्या कर रही हो?" एक दिन सलीम ने फ़ोन पर पूछा।

"तुम्हारे लिये असाइन्मेंट तैयार कर रही हूँ.... इस बार तुमने पेपर्ज़ के लिये कितनी तैयारी की है?"

"तैयारी कैसी? पहले इम्तिहान तो हों!"

"क्यों? क्या तुम्हारी सियासत भी उन्हीं रास्तों पर चलने लगी है?"

"देखो न बिलकिश, स्टूडेंट्स की कितनी सारी समस्याएँ सामने हैं। उन परेशानियों से निजात पाने के लिये ज़रूरी है बॉइकॉट करवाया जाय क्योंकि उसी से व्यवस्था पर दबाव डाला जा सकता है।"

"पर सलीम, उसमें भी भुगतना तो स्टूडेंट को ही पड़ता है, व्यवस्था पर तो कोई असर नहीं पड़ता और उसी बॉइकॉट के कारण पुलिस वालों को भी यूनिवर्सिटी आना जाना होगा। ऐसा न करें सलीम, कुछ सोचें...." बिलकिश उसे समझाने की कोशिश करने लगी।

"बेहतर यही है कि तुम इस मामले में न उलझो।" सलीम ने फ़ोन रख दिया।

इस बार व्यवस्था ने परीक्षाओं के लिये सेना की मदद ली। परीक्षाएँ बेहद आराम और सुकून से शुरू हुईं पर ख़ौफ़ का एक अनछुआ अहसास हर स्टूडेंट्स के दिल और दिमाग़ पर छाया रहा.... आज परीक्षाओं को शुरू हुए चार दिन हुए थे।

सुबह का वक़्त था और स्टूडेंट्स दस्तूर के अनुसार परिसर (कैम्पस) में मौजूद हुए, पर आज टीचर्स की बसें अभी तक नहीं पहुँची थीं.... नौ. .... दस.... अचानक एक ख़बर बवंडर की तरह परिसर में आ पहुँची।

"टीचर्स की बस पर पटाखे फेंके गए हैं.... चार टीचर्स ज़ख्मी हालत में अस्पताल पहुँचाए गए हैं।"

"यह किसने किया?"

अलग अलग आवाज़ें..... अलग-अलग विचार सुनने में आए।

"प्रेशर ग्रुप वालों का काम है।' प्रतिध्वनि बिलकिश के कानों तक पहुँची।

"सलीम.... यह तुमने किया?" बिलकिश के लहजे में बेयक़ीनी के साथ दुख का भी अहसास था और ज़हनी तौर पर सलीम के मुँह से 'नहीं' सुनने की ख़्वाहिश भी।

"नहीं बिलकिश.... व्यवस्था ने यह खुद करवाया है।" सलीम ने हँसते

हुए जवाब दिया।

"प्लीज़ सलीम, ऐसा मत करो.... मेरे ख़्वाब, मेरी तमन्नाएँ.... कहीं घायल न हो जायें!"

"पगली, तुम्हारे ख़्वाबों को हक़ीक़ी स्वरूप देने के लिये तो यह सब कर रहा हूँ। महलों में रहने वाली, चांदी के चम्मच से खाने वाली को झोपड़ी में तो नहीं रखूँगा?"

"मुफ़लिसी कोई दोष नहीं, कोई तिरस्कार नहीं और मेरे माता-पिता की कोई माँग भी नहीं है...." बिलकिश ने उसे समझाते हुए कहा।

"प्लीज़ सलीम, इस बार सुकून से परीक्षाएँ चलने दो।"

"तुम्हें पता है, इस बार हमारी योजना क्या है?"

"कौन सी?"

"हॉस्टल पर हमला करेंगे।"

"आखिर परीक्षाओं से आप लोगों को इतनी नाराजगी क्यों?" बिलकिश ने शक़ी अंदाज़ में उससे पूछा।

"परीक्षाओं से हमारा क्या लेना देना.... पता है हम ये सब क्यों कर रहे हैं?"

"क्यों....?"

"हमें आज्ञा मिली है कि वहाँ हॉस्टल ख़त्म किये जायें, और हम वही कर रहे हैं.... हमें व्यवस्था में भय पैदा करना है। तुम्हें तो पता है कि हॉस्टल ताक़त के स्त्रोत होते हैं। हमारे ख़िलाफ़ उठती ललकार की आवाज़ है... कोई भी समस्या हो.... यहाँ पर जलाई गई लौ, रोशनी ज्वाला बनकर घर-घर, बस्ती-बस्ती पहुँच जाती है। हमें यह आदेश मिला है और वह हमें स्वीकार है...." सलीम नशे में सच कहता रहा और बिलकिश का चेहरा तमतमाता रहा, गुस्से से, नफ़रत से.... या शायद बेबसी से। वह तेज़ी से निकल जाती है.... सलीम वहीं बैठा है।

रेखांकित किया हुआ दस्तूर.... परीक्षाएँ शुरू.....

हॉस्टलों पर हमले.... सलीम दो बार गिरफ़्तार.... बिलकिश की माँ नसीम अख़बार लेकर बिलकिश के सामने खड़ी है.... बिलकिश की गर्दन झुकी हुई है।

रात के पहर वह दरी पर बैठी खुदा के दर मिन्नत कर रही है- "रब

करे सलीम सही राह पर आ जाए। क़ौम का हमदर्द बने, उसके ख़्वाबों की तामीर हो।"

"पर मेरा भी तो अहम् है। मैं तुम्हें ऐसे कैसे घर लेकर जाऊँगा?" सलीम का जवाब था।

और फिर.... अख़बार में ख़बर छपी कि प्रेशर ग्रुप के अध्यक्ष को गिरफ़्तार किया गया।

बिलकिश की माँ ने अख़बार बिलकिश को दिखाई, "बेटे, हमने तुम्हें आज़ादी दी है, अपने लिये जीवन-साथी चुनने का अख़्तियार भी तुम्हें है. ... पर तुम्हें मार्गदर्शन करने का अख़्तियार हमें भी है। हमारी ख़्वाहिश है कि तुम जो भी फ़ैसला करो, सोच समझ कर करो।"

बिलकिश ख़ामोश थी। जिस माँ-बाप ने उसकी झोली में हमेशा मुहब्बतों की सौग़ात डाली, उन्हें दुख देने का उसे अख़्तियार न था। जल्दी ही सलीम की आज़ादी की ख़बर भी मिली। सलीम गाँव गया हुआ था।

"बिलकिश.... मैं आज़ाद हो गया हूँ.... ज़मानत पर रिहा हुआ हूँ.. .. जल्द ही हैदराबाद आऊँगा।" सलीम ने दादू (शहर का नाम) से फोन किया था।

"सलीम, मेहरबानी करके इस रास्ते पर मत चलो...." बिलकिश ने अनुरोध किया।

"तुम तो पागल हो, एकदम डरपोक... अगर यही हाल रहा तो तुम मेरे साथ कैसे चल पाओगी?" सलीम हँसने लगा।

◆◆

दोबारा सिमेस्टर की परीक्षाएँ शुरू होने वाली हैं। सलीम की गतिविधियाँ कुछ गोपनीय हैं.... कभी बिलकिश से मुलाक़ात होती तो कभी कई दिन ग़ायब रहता।

"सलीम, आख़िर तुम्हें क्या हो गया है....?" व्यायामशाला की सीढ़ियों पर बैठी बिलकिश सलीम से कुछ पूछ रही है। बिलकिश उसमें आए हुए बदलाव को बख़ूबी महसूस कर रही है.... आवाज़ में लड़खड़ाहट... लहजे़ में असामान्यता....और कुछ अजीब बू!! ❑

गोश्त का टुकड़ा

◆जगदीश

छः बजते ही कारख़ाने का दरवाज़ा खुला, मज़दूर सैकड़ों की संख्या में कारख़ाने से निकलने लगे- लम्बे, ठिगने, काले, गोरे, बूढ़े-जवान सब तरह के मज़दूर थे। हर एक आदमी दूसरे से बिलकुल अलग लेकिन उनमें एक समानता थी, सबकी आँखें नींद से झपकती हुई, थकी हुई। वे जल्दी-जल्दी मुख्य दरवाज़े से उसी तरह निकल रहे थे, जिस तरह क़ैदी छुट्टी मिलने पर हवाखोरी के लिये जा रहे हों, या खेत-खलिहानों से सुबह के वक़्त उन भेड़-बकरियों का समूह जा रहा हो जो जमींदार के खेत में घूमने के जुर्म में क़ैद कर दी गई थी। शंकर ने नीले आसमान पर नज़र डाली।

आसमान पर बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े थे- सफ़ेद, स्याह, नीले, एक दूसरे में घुले-मिले होते हुए, मासूम बच्चे की तरह मुस्कराते हुए। सफ़ेद बादल के एक टुकड़े ने शंकर के ख़यालात में उत्पात पैदा कर दिया। दरिया का पानी जो समंदर में गिर कर शांत हो चुका था, एक कंकर के गिरने से ज़ोर ज़ोर से हरक़त करने लगा। सतह का पानी जैसे रेला बनकर विस्तार पाता रहा और धीरे-धीरे छोटी पंगडडियों से अपना रास्ता बना रहा था पर इन सभी रेलों में एक सूरत का अक्स था और वह था शंकर की बीवी का अक्स।

शंकर के शरीर में एक झुरझुरी सी लहराई। उसे एक शीतल तरंग सी जैसे छू गई। उसे अपने बदन पर पड़ा हुआ खद्दर का कुर्ता भी उस ठंड के बचाव के लिये कम लगा। उसकी टाँगों की मज़बूती जैसे ढीली पड़ गई। वह एक अनजान डर से थरथरा उठा। उसकी बीवी का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। अनजाने में शंकर ने उसके बारे में क्या क्या सोचा- 'वह जाने किन-किन तकलीफ़ों से गुज़र रही होगी? क्या वह उसे देख सकेगा?' वह चाहता था कि किसी तरह उड़कर अपनी बीवी के पास पहुँच जाए और

उसे वे तमाम बातें सुनाए जो इस काम के दौरान वह अपने सीने में जमा करता रहा था। उसे अपने सीने पर एक बोझ सा मालूम हुआ और यह यक़ीन भी था कि अपनी बीवी से उसे हमदर्दी मिलेगी। आज वह जैसे हमदर्दी का मोहताज था। वह तेज़-तेज़ चलने लगा।

शंकर हसू बिहार के एक छोटे से क़स्बे सुलेमानपुर के एक जुलाहे अभयराम का लड़का था। उसका बाप किसी हद तक पढ़ा-लिखा होने के कारण एक जाना-माना जुलाहा था। गाँव के बाकी जुलाहे उसके माध्यम से शहर से सूत ख़रीद लेते और बुना हुआ कपड़ा बेचा करते। सन् 1930 में सिविल नाकाबंदी के दिनों में जब अंग्रेज़ी माल का बाइकॉट किया गया और ग़ैर मुल्कों का कपड़ा होलियों की सूरत में जला तो शंकर के पिता का कारोबार ख़ूब चमक उठा। अभय राम ने उन्हीं दिनों में फ़ैसला किया कि वह शंकर को अच्छी और ऊँची शिक्षा दिलवाएगा और विख्यात ओहदे पर तैनात कराएगा। हालांकि शंकर को स्कूल में बिठा दिया गया, पर पिता की बेवक़्त मौत के बाद रिश्तेदारों के रूखे और ठंडे व्यवहार ने शंकर और उसके परिवार को मंज़िल के उस कगार पर लाकर खड़ा किया जहाँ इन्सान ख़ुद को तन्हा और लाचार महसूस करता हो। वह गर्दिश के उस दौर में, अपनी ज़िंदगी के मालिक – अपने ख़ुदा से भी जैसे ऊब गया। उसे यूँ महसूस होता कि उसके मुल्क के पूंजीपति अपनी सियासत को एक ऐसे शिकंजे में जकड़े हुए हैं जिससे रिहाई पाना नामुमकिन है। अपनी इस हुकूमत से मुश्किलों का हल पाना प्रजा के लिये एक घुटन का दायरा बन गया, और हुकूमत प्रजा की कमज़ोरियों को उनके हाथों को हासिल करने की जद्दोजहद को उनकी मुश्किलों की वजह बताती रही। जहाँ प्रजा हुकूमत से, उनकी रियायतों से प्रताड़ित रहती थी, हुकूमत पर उसका कोई असर नहीं होता। हुकूमत को कोई ख़ौफ़ भी नहीं छू पाता, शायद इसलिये कि वह हुकूमत करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझती है।

अपने माहौल से तंग इंसान के दिल में अपनी हुकूमत के ख़िलाफ़ एक विद्रोही भावना पनपती हैं। वहीं उसके दिल में कुछ करने का अहसास दृढ़ हो जाता है, लेकिन अपने अनचाहे पेशे पर नज़र डालकर उसे गुमान होता है कि वह एक अकेला चना पहाड़ का क्या बिगाड़ लेगा और उसकी बेबसी

की हालत में वह हर उस ताकत से मिल जाता है जो हुकूमत के ख़िलाफ़ है।

इन हालातों में शंकर का पढ़ाई कायम रखना नामुमकिन सा हो गया। उसे आठवीं कक्षा से ही अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। उस वक़्त पढ़ा लिखा शंकर अनपढ़ शंकर से भी बदतर हालत में था। अब पढ़ाई के बंद होने के कारण उसे अपना पैतृक पेशा अख़्तयार करने में कोई दिक़्क़त महसूस न होती। लेकिन आठ साल की शिक्षा ने उसे उस पेशे को महत्वहीन समझना सिखा दिया था। पढ़ाई के दौरान वह अपने भविष्य के हसीन और शानदार ख़्वाब देखता रहा था। लेकिन वक़्त ने उसे ख़्वाब से झंझोड़ा और वह अपनी क़िस्मत आज़माने पर डट गया।

भागलपुर सुलेमानपुर से तीस मील दूर था। शंकर ने भागलपुर के किसी मिल में नौकरी करने का इरादा किया। तनख़्वाह के तौर पर उसे हर माह एक निर्धारित की हुई रक़म के मिलने का विचार उसे मिल की तरफ खींच रहा था। लेकिन बीवी की मुहब्बत उसे शहर से परे धकेल रही थी। अब तक वह अपनी बीवी से बिल्कुल भी जुदा न हुआ था। इसलिये जुदाई का ख़्याल उसे हतोत्साहित करता। एक लंबी दिमाग़ी कशमकश के बाद शंकर ने फ़ैसला कर लिया। भूख मुहब्बत पर हावी हो गई।

मुस्कराते हुए बादल को देखकर उसे अपनी बीवी याद हो आई – अल्हड़, जवान। अपनी रवानगी का मंज़र याद करके उसकी आँखों में आँसू छलक आए। उसकी माँ ने उसे कितने प्यार से तिलक लगाया था। उसकी बीवी किवाड़ की ओट में खड़ी उसकी तरफ़ हसरत भरी निगाहों से देखती रह गई थी, जैसे वह किसी दूर देश में जा रहा हो, जहाँ से वापस आना मुश्किल नहीं नामुमकिन था। चलते वक़्त उसकी माँ ने उसे पिता तुल्य अंदाज़ से चूमा था और रो कर अपनी बेबसी का वास्ता दिया था। शंकर ने भी हर रोज़ ख़त लिखने का वादा किया था और अपनी माँ से बार बार कहा था कि ख़त चन्देश्वरी चाचा से पढ़वा लिया करे। लेकिन आज शंकर को घर से विदा हुए सात रोज़ गुज़र गए थे। इस दौरान वह कोई ख़त न लिख सका था। वह ख़ुद को मुजरिम महसूस कर रहा था। लेकिन फिर उस का दिल सफ़ाई पेश करने लगा– उसे इतनी फुरसत ही कहाँ मिली थी कि वह ख़त लिख सके! छः रोज़ तो सुबह से शाम तक वह अलग–अलग कारखानों में घूमता रहा

था कि उसे कोई काम मिल जाए। पूंजीपतियों के सामने रोता रहा, गिड़गिड़ाता रहा, उसने अपनी ग़रीबी का वास्ता दिया, अपनी बूढ़ी माँ का हाल बताया, लेकिन सब बेकार। कल ही एक पूंजीपति ने न जाने क्यों उस को एक नौकरी दी– तीस रुपये माहवार, जिस से उसने तीन ज़िंदगानियों का पेट पालना था– ख़ुद, माँ, बीवी, तीनों का।

आज शंकर ने फ़ैसला कर लिया कि वह अपनी बीवी को ख़त ज़रूर लिखेगा।

सराय में पहुँचकर वह इतना थका माँदा था कि दम लेने के लिये वह दहलीज़ में पड़ी हुई चटाई पर बैठ गया.... उसने सुना था कि नहाने से पहले पसीना सुखा लेना चाहिए। लेकिन अभी बैठा ही था कि जम्हाई आई और तबीयत लेटने के लिये मचल गई। वह चटाई पर लेट गया। उसने अकड़े हुए अंगों को ढीला छोड़ दिया और कुछ सुकून महसूस किया। उसे ऐसे लगा जैसे उसकी थकान आहिस्ता–आहिस्ता चटाई पर गिर रही है। उस पर एक उनींदापन छाने लगा। ऐसे में उसकी आँख लग गई.... उसकी आँख उस वक़्त खुली जब शाम को सराय का चौकीदार मालिक के आदेश पर सफ़ाई कराने में जुट गया। भंगिन की लड़की को सामने खड़ा देख कर न जाने क्यों उसे फिर अपनी बीवी याद आ गई। उसने चौकीदार से समय पूछा लेकिन चौकीदार भी लापरवाही से कुछ इस तरह ख़ामोश रहा जैसे वह ख़ुद पूंजीपति हो।

ढलती हुई शाम रात के आने का पता दे रही थी। शंकर जल्दी से उठा और बाहर ढाबे पर खाना खाकर मिल की तरफ़ हो लिया।

पाँच रोज़ और यूँ ही गुज़र गए। जब शंकर सुबह को कारख़ाने से लौटता उसे अपनी आँखें नींद के मारे बोझल सूजी हुई महसूस होतीं। तमाम रात खड़ा रहने के कारण उसकी टाँगें सुन्न हो जातीं। उसे गुमान होता कि वह उस के बदन का हिस्सा नहीं हैं। चलते वक़्त उसे महसूस होता जैसे उस के बदन को चीरा जा रहा है। उस की रग–रग दर्द करती, जोड़ जोड़ टूट कर गिर जाना चाहता, हर रोज़ वह यही फ़ैसला करता कि अगली शाम वह फिर कारख़ाने नहीं जाएगा, लेकिन शाम से पहले ही बेकारी का ख़्याल भूत बनकर उस के सामने आ खड़ा होता और वह फिर कारख़ाने चला जाता।

इन दिनों में उसे अपनी माँ, बीवी और घर का ख़याल एक बार भी

नहीं आया। आता भी कैसे? वह कारख़ाने से लौटता और बिना नहाये या खाना खाए सो रहता। शाम को उठता, नहा कर खाना खाता और कारख़ाने चला जाता। कारख़ाने के सिवा उसे किसी चीज़ के बारे में सोचने की फ़ुरसत ही न थी। कारख़ाने के बड़े-बड़े पहिये हमेशा उस के दिमाग पर छाए रहते, बड़े-बड़े बुलंद पहिये, जो लगातार घूमते रहते थे, बेजान बिना सोचे समझे और उसी तरह थे कारख़ाने में काम करने वाले। हर शख़्स का काम स्पष्ट रूप से तय हुआ करता। उसके लिये सोचने की कोई गुंजाइश न थी। अपने बारे में सोचने पर उसका हक़ न था। उस का काम सिर्फ़ कील दबाना, धागा पिरोना, धागों के रंग बदलना था। उसी सिलसिले में शंकर कई बार सोचता- 'ये काम कितने आसान हैं कोई मुश्किल नहीं, ताकत का खर्च नहीं, दिमाग़ पर ज़ोर नहीं, लेकिन इसके बावजूद इतनी थकान क्यों?'

शनिवार का दिन था, शाम का वक़्त। शंकर आहिस्ता आहिस्ता कारख़ाने की तरफ़ जा रहा था, बिल्कुल इस तरह जिस तरह एक मरीज़ आप्रेशन टेबल की तरफ़ जा रहा हो। इत्तिफ़ाक से उसे अपना पुराना दोस्त बिहारी दिखाई दिया। बिहारी और शंकर एक ही गाँव के रहने वाले थे और एक दूसरे को बचपन से जानते थे। लेकिन शंकर के पिता के देहान्त के कुछ माह पहले बिहारी के पिता अपने परिवार सहित किसी दूसरे गाँव में जाकर बस गए थे। उसके बाद बिहारी के साथ कौन-कौन से हादसे पेश आए, इन का शंकर को कोई ज्ञान न था। शंकर सिर्फ़ इतना महसूस कर सकता था कि बिहारी को बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। वह पहले से कहीं दुबला हो गया था और अब उस का चेहरा रोटी की तरह सपाट और सफ़ेद था।

बिहारी शंकर को देख कर फूट फूट कर रोने लगा। शंकर को हैरानी हुई। उसे कभी यक़ीन न था कि बिहारी उसे मिलकर मुहब्बत के मारे यूँ रोने लगेगा। शंकर बिहारी की तरफ़ देखने लगा... पर बिहारी के आँसू थम न पाए। अब शंकर की हैरानी बढ़ गई। उस के दिल में बिहारी के लिये हमदर्दी का जज़्बा जोश भरने लगा। शंकर ने बिहारी से रोने के कारण पूछा, लेकिन वह दहाड़ें मार-मार कर रोने लगा।

"बापू का ख़त आया है, वह मर गई!"

"हैं.... वह मर गई।" शंकर ने बिहारी के चेहरे की तरफ़ तकते हुए

दोहराया। शंकर पर जैसे वज्र गिरा और वह कितनी ही देर बिहारी की तरफ़ उसी तरह देखता रहा। उसकी आँखों के सामने अपना घर घूम रहा था। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसकी माँ दहलीज पर बैठी हुई शोक मना रही हैं। गाँव की औरतें सब उसे दिलासा दे रही हैं, और कह रही हैं–

"चंदा तेरा बेटा जीता रहे, बहुएँ और बहुत...."

ये शब्द शंकर के कानों में ज़ोर-ज़ोर से गूँज रहे थे जैसे कोई उसके कानों में पिघला हुआ शीशा उंडेल रहा हो।

बिहारी कह रहा था– "बापू ने लिखा है, गर्भावस्था में कोई गड़बड़ी हो गई, और वह मर गई।" गर्भ का नाम सुनकर शंकर पर क्या गुज़री, यह शंकर ही जानता था। आज से बारह रोज़ पहले शंकर ने भी अपनी बीवी को दर्द की हालत में छोड़ा था। हक़ीक़त में वह कुछ समय तक अपना भागलपुर आना भी उसी वजह से स्थगित करता रहा था। लेकिन बढ़ती हुई महंगाई ने उसे मजबूर कर दिया था कि वह अपनी बीवी को उस हालत में छोड़ कर चला आए।

बिहारी की बीवी की मौत की ख़बर ने उसे चेतावनी दी। वह एक परिंदे की तरह फड़फड़ाया, जो आज़ाद होने के लिये संघर्ष कर रहा हो लेकिन नौकरी में हसीन क़ैदखाने ने कुछ समय के लिये संघर्ष के जाल में फांस रखा था। उस ने इरादा किया कि वह अगले रोज़ सुलेमानपुर जाएगा।

पहली बार शंकर तेरह दिन के बाद सुलेमानपुर वापस आया। वहाँ पहुँचकर शंकर ने देखा कि वह आज एक हसीन बच्चे का बाप था।

इतवार की शाम को शंकर फिर हर रोज़ ख़त लिखने और हर इतवार सुलेमानपुर आने का वादा करके वापस भागलपुर लौट आया।

ख़त लिखने का वादा तो वह कमी पूरा कर न सका, लेकिन शंकर हर इतवार को सुलेमानपुर जाता और सोमवार की सुबह लौट आता। छः दिन के लिये फिर घर से बेख़बर हो जाता। उसकी यह चर्या कुछ ऐसी हो गई कि वह खुद को मारकर जैसे पूरी कर रहा था। सोमवार को घर से लौटते उसे कोई दर्द महसूस न होता। छः रोज़ काम करते हुए उसे कभी इतवार का ख़्याल न आता और इतवार को घर जाते हुए उसे कोई ख़ुशी न होती। इतवार को सुलेमानपुर जाना जैसे उसके टाइम-टेबल में शामिल हो गया था।

इधर बढ़ती हुई मंहगाई चैन ही नहीं लेने देती थी। भागलपुर जैसे शहर में एक वक्त का खाना खाकर भी पंद्रह रुपये माहवार से कम में गुज़ारा करना नामुमकिन था और बाक़ी पंद्रह रुपये में तीन तीन जानों का गुज़ारा होना मुश्किल सा था। हर महीने शंकर की माँ गाँव के साहूकार से पाँच सात रुपये कर्ज़ लेती। उसे इस बात की ख़बर ही न थी कि यह कर्ज़ कब अदा हो सकेगा, और हो भी सकेगा या नहीं।

अभी उसके पिता के देहान्त को एक साल ही गुज़रा था कि शंकर पचास रुपये का कर्ज़दार हो गया– पचास रुपये जो वह और उस का परिवार एक महीना लगातार दो वक़्त फ़ाक़े करके भी अदा नहीं कर सकते थे।

दरिद्रता से तंग आकर शंकर एक दिन अपने मिस्तरी के पास पहुँचा और तनख़्वाह बढ़ाने की दरख़्वास्त की। मिस्तरी भी जैसे मशीन का एक पुर्ज़ा था जिसका इंजन पूंजीपति था। उससे किसी तरह के रहम की उम्मीद बेकार थी। दरअसल वह कर भी क्या सकता था? तनख्वाह बढ़ाना उसके हाथ में न था। तनख्वाह काटने का हक़ मिस्तरी को सौंप रखा था और तनख़्वाह बढ़ाना सिर्फ़ पूंजीपति का हक़ था। मिस्तरी ने गुरबत का फ़क़त एक ही इलाज बताया कि वह इतवार को भी ओवर टाइम करने लग जाय.... इस तरह आठ या दस रुपये माहवार कमाए जा सकते हैं...." मिस्तरी ने कहा।

शंकर यह सुनकर ख़ामोश रहा। एक बार वही दुश्वारी सामने थी, लेकिन इस बार मुहब्बत का मुक़ाबला मुफ़लिसी से था, भूख से नहीं, लेकिन मुहब्बत के चेहरे का रंग भी उतर चुका था। शंकर मुहब्बत और मुफ़लिसी के बीच का फासला पाटने के प्रयास में जुटा रहा।

अब वह महीने में तीस दिन कारख़ाने जाता। सुबह की नींद से छलकती हुई आँखें लिये हुए सराय को लौटता। शाम तक सोता रहता और उठते ही फिर कारख़ाने चला जाता। उसकी रूह पर रंग की परतें चढ़ती रहीं, पर उनमें फीक़ापन था, वह निर्जीव हो चुका था, उसे अपने घर से कोई वास्ता न था। उस का फर्ज़ महीने आख़िर में पच्चीस रुपये मनीऑर्डर कटाकर भेजना था और बस। अब माँ की ममता, बीवी के आँसू और बच्चे का प्यार उस के दिल की हरक़त को तेज़ नहीं कर सकते थे। अब वह कटे हुए जानवर के गोश्त के एक टुकड़े की तरह था जिस पर स्पर्श का कोई असर नहीं होता। ❑

दुनिया एक स्टेज है

◆नूर अलहदा शाह

उस महफ़िल में सिर्फ़ मुझे ही नाचने के लिये बुलाया गया था। रात के पहले पहर में जब भीड़ इकट्ठा हुई थी और सभी मदिरा पीकर बेसुध हो चुके थे, तब मैंने पायल की छम–छम से धीरे–धीरे पाँव उठाने शुरू किये। स्वर्गीय कजल बाई को जन्नत नसीब हो, हमेशा कहती थी कि पहले तमाशाइयों को प्याले भर भर के पिलाओ, जब नशे में चूर हो जाएँ, बाद में नाचो– सिर्फ़ नोट ही नहीं, पर खुद को भी तुम पर कुर्बान कर देंगे। पायल की छम–छम के साथ साजिन्दों ने भी साज़ छेड़ने शुरू किये और ज़मीन मेरे पैरों के तले ज़ोर–ज़ोर से घूमने लगी। उसी फिरते मंजर में ही जैसे बिजली की तरह मेरी आँखों के सामने से वह गुज़रकर गुम हो गया। परदे में मुँह डालकर बैठा, उसका सारा शरीर पटसन में लिपटा हुआ। मुझे लगा वह बेसुध तो है पर उसने मदिरा नहीं पी है। एक वही है जो जाग रहा है, बाक़ी सब खुली हुई लाल आँखों के भीतर मरे पड़े हैं और उन के खुले हुए मुँह में फ़क़त कौवे काँ काँ कर रहे हैं। कि नाच नर्तकी! नाच–नाच–नाच नर्तकी! नाच–नाच!!! नोट, शिकार हुए परिंदों की तरह हवा में एक चक्कर लगाकर वापस आकर ज़मीन पर गिरते और ज़मीन और भी तेज़ी से मेरे पैरों तले घूमती थी। ज़मीन के उस तेज़ गोलाकार चक्कर में ही फ़क़त एक बार उसने धीरे–धीरे परदे में से मुँह निकालते हुए देखा और बस एक ही नज़र मुझपर यूँ डाली जैसे मैं कोई अयोग्य चीज़ हूँ!! और एक फूँक मारकर जैसे कीड़े को हवा में उड़ा दिया जाय, वैसी मुस्कराहट के साथ वापस परदे में मुँह डाल दिया। स्वर्गवासी कजल बाई कहती थी कि अगर ऐसा कोई तमाशाई, जिसकी नज़र में तेरी कोई हैसियत न हो, उसे फंसाकर छटपटाने पर मजबूर करके अधमरा

करके फेंक दो। जैसे जैसे तड़पेगा और चिल्लाएगा, ज़माना उसका तमाशा देखकर पतंगों की तरह तुझपर मरेगा। उसका परदे में वापस मुँह डालने पर मैंने पायल का सुर और भी तीव्र किया और नाचते-नाचते ज़मीन के घेराव को और भी उसके क़रीब ले आई। उसके आगे गोलाकार में घूमती रही, पर न वह हैरान हुआ न चौंका न परदे में से मुँह को निकाला, न हिला, न डुला। बस रात शम्अ की तरह पिघलती रही और तमाशाई पतंगों की तरह ख़ाक़ होते रहे।

फ़जर की अज़ान के कुछ पहले महफ़िल बर्बाद शहर के मंजर में बदल गई, जिसे दुश्मन का लश्कर घोड़ों की एड़ियों तले कुचल गया हो और यहाँ वहाँ लाशों के ढेर दिखाई दे रहे हों। खाने के लिये सजाए पकवान वहीं बिखर गए, बिस्तर रजाइयाँ सोए हुए जिस्मों के नीचे से खिसक गईं। शहर उजड़ा। वादक माल बटोरकर चलते बने, बस मैं थी और वह था। बीच कमरे में लाल ईरानी ग़लीचे पर बैठ कर मैंने पायल खोली। बस मुझसे दो क़दम दूर वह परदे में मुँह डाले बैठा था। मेरे हाथ पायल पर और आँखें उसपर गढ़ी थीं। बाहर मस्जि़द में फ़जर की अज़ान शुरू थी और पूरी रात में उसने दूसरी बार परदे में से मुँह निकाला। उसने उठना चाहा तो मैंने बिजली की रफ़्तार से उठकर उसे बाँहों से जा पकड़ा।

"ठहरो!" मैंने कहा।

वह जैसे न चाहते हुए भी बैठ गया और चुपचाप मेरी ओर देखता रहा।

"मेरा नाच तुम्हें नहीं भाया?"

वह सिर्फ़ मुस्कराया।

"किस बात का ग़ुरूर है? मर्दानगी पर?" मैंने एक ठहाका लगाया और वह एक सलीकेदार मुस्कराहट होठों के बीच दबाए बैठा रहा।

"वह मर्द ही कैसा, जिस की आँख औरत को देखकर बेक़ाबू न हो?" मैंने कहा- "पर अभागे, शर्मसार है तेरी मर्दानगी।" मैंने अपनी आँखों में धिक्कार घोलकर उसकी ओर निहारा पर उसने न मौन तोड़ा, न मुस्कान।

"तन्हाई में मेरा नाच देखोगे?" मैंने पूछा- "भीड़ से तेरी शर्मसार मर्दानगी घबराती है शायद। चलो भीड़ से दूर किसी तन्हा कोने में चलकर मेरी जवानी का जलवा देखो। तुम्हारी शर्मसार मर्दानगी मेरी जवानी का ताब झेल न पाएगी।

मजनू की तरह कपड़े फाड़कर, चिल्लाते हुए सुनसान वीराने बसाओगे। है कुछ दम? यहाँ कई आए और उनका वध हुआ। आओ, आज तुम खुद को आज़माओ, मैं खुद को आज़माती हूँ। वह नर्तकी कैसी जो दिलेरों को न लुभाए। स्वर्गीय कजल बाई जैसी तेज़ नज़र रखने वाली पारखी औरत भी कहा करती थी कि अपनी सत्तर वर्ष की उम्र में उसने मुझ जैसी नर्तकी नहीं देखी जिसकी नज़र का मारा न मर पाया, न जी पाया, बस तड़पता रहा और एक घूँट के लिये तरसता रहा। कहा करती थी कि वह घूँट कभी मत पिलाना जिसे पीने से मरे हुए में जान जान पड़ जाय। चलो, चलकर देखो तो सही मेरा नाच, जिसे देखने के लिये बादशाह भी फ़क़ीर बन गए। नोटों के थाल भरकर लाने वाले लौटते वक़्त दया का कटोरा हाथ में लेकर मुझसे ही भीख माँगते रहे। पर मैं बादशाह को भीख देती हूँ, फ़क़ीर को नहीं। पर तुम पर निवाज़िश करने के लिये तैयार हूँ। आओ, आओ, तुम अपना इम्तिहान लो, मैं अपना इम्तिहान लूँ।"

उसके पटसन का सिरा झटके से अपनी ओर खींचा। उसने वह सिरा अपनी ओर खींच लिया। उसकी आवाज़ में इतना सुकून था जैसे दरिया की छाती पर नाद की प्रतिध्वनि गूँजती हो, दूर तक, सरल, विनीत व अकेली।

"सब बेकार है नर्तकी।" उसने आख़िर मौन तोड़ा– "बेकार, निरर्थक! यह सारा गुमान है– यह यौवन, यह नृत्य, कुछ भी तुम्हारा नहीं है। जिसे तुम नृत्य कहती हो वह किसी बारीक सुई के सुराख से गुज़रते धागे का सृजन है, जिसका दूसरा सिरा किसी दूसरे के हाथ में है और तुम फ़क़त नचाई जा रही हो। उसके लिये न तो तुम्हारे नाच पर कोई मर मिटा है, बल्कि इसलिये कि ज़माने को गर्दिश में रखना है। शाह को फ़क़ीर बनाना है और फ़क़ीर को तख़्तनशीं करना है जिस की उंगलियों पर सबके धागे लिपटे हुए हैं, उसकी बेफ़िक्री तो देखो... सिर्फ़ अपनी उँगलियों की जुंबिश को देखता है, नीचे पुतलियों का नाच नहीं। ये तुम्हारे चक्कर लगाते पैरों के नीचे विनाशी फाँसी के घाट का तख़्ता बिछा हुआ है, फिर यह नाच भी कैसा नाच है नर्तकी? जहाँ जहाँ पैर धरा, वहाँ वहाँ से ज़मीन खिसकती जाये। यह जिसे तुम यौवन कहती हो, पता भी है उसकी हक़ीक़त क्या है? कुछ भी नहीं! सिर्फ़ हड्डियों पर मुट्ठी भर माँस। जब तक गिद्ध, चीलों का निवाला बनने

के क़ाबिल है, आदमी को अपने होने का गुमान है। जैसे जैसे आदमी के माँस पर चीलें जमा होती हैं, वैसे वैसे आदमी अपनी ही सुगंध का, मतवालेपन का आनन्द लेता है। माँस सड़ जायेगा, ये सागर जैसे लोचन, ये गुलाब जैसे होंठ, ये छोलियों की तरह लहराती बाँहें, ये भंवर की तरह घूमते पाँव और ये ख़ुशबू देने वाला तन, कुछ भी नहीं है नर्तकी, फ़क़त माँस है, सिवा इसके आदमी हड्डियों की एक मुट्ठी भर है, जिस पर उसके घायल मन का निशान भी नहीं मिलता। ये आँसू, मुस्कुराहट, पीड़ाएँ, नाज़ो-अदाएँ सब हवा की एक फूँक हैं। सदियों-दर-सदियों आदमी की गुमनाम हड्डियाँ खाक बनती रही हैं। कौन सी हड्डियाँ शाह की, कौन सी ख़ाक फ़क़ीर की, यह गुत्थी कोई भी सुलझा नहीं पाया। सिवाय उसके जिसकी उदारता तो देखो! ख़ाक से आदमी बनाकर ख़ाक में मिला देता है। तुम तो नर्तकी हो, अपने नाश्वंत यौवन पर मुस्कुराती हो, पर पीछे मुड़कर तो देखो- बल्ले, बल्ले.... दुनिया के घोड़ों के खुर के तले कुचले गए लश्कर, ख़ुदाई के दावेदार राजमहल, क़िले सब धराशायी हो गए। दुनिया ने थूक दिया या कितनों ने धन-सम्पत्ति की तरह हाथों में लेकर एक ही फूँक से उड़ा दी और नर्तकी कुछ के लिये तो यह ज़िंदगी फ़क़त एक बारीक पारदर्शी पर्दा- आशिक और माशूक के बीच में है। आशिकों ने तो एक ही झटके में दुनिया को रेशा रेशा कर दिया। तुम बताओ नर्तकी, जब तुम चक्कर लगाती हो, तब तुम्हें यह दुनिया क्या लगती है? मदिरा का प्याला? कभी सोचा है, जब नशा उतरेगा तो क्या होगा? मदिरा पीने के लिये नहीं होती नर्तकी! मदिरा गिरा देने के लिये होती है और फिर चखकर देखो, मदिरा को होठों तक लाकर गिरा देने का नशा बस इतना नशा चख लेना चाहिये, नहीं तो बाक़ी सब बेकार है, निष्फल है, ख़ाक है, फ़ना है।"

जितनी देर वह बात करता रहा, मुझे साँस लेना ही याद न रहा। मुझे लगा माँस मेरी हड्डियों से धीरे-धीरे सड़ गल रहा है और एक अजीब सी गंदी बू मेरे चारों तरफ़ फैल रही हो। ज़मीन मेरे पैरों तले खिसक रही है और हमारे सिवा कोई तीसरा है जो उसके और मेरे बीच में मुस्कुरा रहा है, उसके हाल पर भी और मेरे हाल पर भी। मेरा गला ख़ुश्क होने लगा और आँखों में उसके सिवाय सभी मंजर धुंधला से गए। जाने क्या हुआ और क्यों

हुआ, मैंने जैसे अपना समस्त वजूद इकट्ठा करके अपने दोनों हाथों में समेट लिया, और उसके हाथ पकड़कर, उन पर अपने होंठ रख दिये थे। उसी क्षण मुझे लगा कि मेरे पैरों के नीचे से सारी ज़मीन खिसक चुकी है, और मैं फ़ना के समदंर में नीचे, और नीचे डूबती जा रही हूँ। घुमावदार तरीक़े से चक्कर काट रही थी उसके हाथ का सहारा भी उस समंदर में एक तिनके की तरह था, वह भी छूटता गया। मेरी हालत उस शराबी जैसी थी जिसे अपना नाम भी और घर का रास्ता भी याद न रहा हो। कैसे लड़खड़ाते घर पहुँचने की बजाय स्वर्गीय कजल बाई की क़ब्र पर पहुँची, याद नहीं? याद है तो सिर्फ़ यह कि सूर्य ढलकर साँझ बन चुका है। नीचे हर दिशा में जहाँ तक नज़र जाती है क़ब्रिस्तान का फैलाव था और ऊपर– बहुत ऊपर गिद्ध और चीलें चक्कर काट रही थीं। मेरा सर कजल बाई के सीने पर था और मैं निरंतर रो रही थी।

नर्तकी चुप हुई तो मैंने रो दिया, कहा– "काले पटसन में परदे में मुँह ढाँप कर बैठा वह शख़्स मैं ही हूँ। अब सालों से पायल बाँधकर गली गली में नाचता हूँ और तुम्हें ढूँढता हूँ ज्ञान का पिटारा हाथ में लिये, दर–दर पर आवाज़ें देता हूँ कि कहीं कोई हाथ आ जाए जो तुम्हारे हाथ जैसा हो। जिस पल तुमने मेरे हाथों पर से होंठ उठा लिये, उसी पल से मैं दर–बदर हूँ। तुमसे पहले मैंने ज़िन्दगी के कई साल मुर्शिद के क़दमों में बैठ कर गुज़ार दिये वहीं पर दुनिया को तर्क करना और साँसों की विद्रोही घोड़ी को बारीक धागों से बाँधकर काबू करना– पर नहीं, नहीं आदमी की साँसें सुख चैन के लिये नहीं, आदमी के लिये पागल हैं। नर्तकी दुनिया त्याग भी दी जाय, पर आदमी आदमी को कैसे त्यागे! यह इंसान, जो फ़क़त हड्डी भर मुट्ठी पर चढ़ा हुआ माँस है, उसके छुहाव की जादूगरी तो देखो! ख़ाक आग का शोला बन जाय और आग के शोले से समंदर। आग का भी वह शोला, जो समंदर में भी न ठंडा हो सके न मन्द हो सके, और उसे तो देखो नर्तकी, आदमी के वजूद के धागे तो अपनी उँगलियों से बाँध लिये हैं, पर उसका मन बेलगाम छोड़ दिया है। बाख़ुदा, जब वजूद उसकी मर्ज़ी से घूमता है, और मन अपनी मनमानी करता है, उस पल आदमी जैसे अधमरा पंछी होता है। हाय हाय. .... कैसे फड़फड़ाता है, कैसे तड़पता है, पर सब बेकार। उस दिन जब तुम

मेरे हाथों पर से अपने होंठ उठाकर तेज़ हवा की तरह यहाँ से निकल गई थी, उस दिन जहाँ तक मुझे याद आता है, पहली बार फ़जर की नमाज़ मेरा दुर्भाग्य बन गई और मैं वहाँ से अधमरे पंछी की तरह सीधे आकर अपने मुर्शिद के चरणों में गिरा था।

"मुझे आज़ाद करो, मुझे आज़ादी चाहिये।" मैंने कहा।

मुर्शिद मुस्कराया जैसे किसी बालक की नामुमकिन ख़्वाहिश पर मुस्कराया हो।

कहा– "आज़ादी है कहाँ? यह सब जो तुम देख रहे हों, इन्सान की क़ैद में अलग–अलग दर्जे हैं। बस, क़ैदखाने की कोठी बदल जाती है, क़ैदी का तरीक़ा बदल जाता है पर आज़ादी तो कहीं भी नहीं है। पहले जहाँ क़ैद थे, वहाँ तुम्हारे साथ दूसरे कई क़ैदी थे इसलिये तुम ख़ामोश सब्र और सुकून से बैठे रहे, पर इश्क! इश्क तो अपने आप में क़ैद–तन्हाई है। बस ख़ुदा माफ़ करे, क़ैद–तन्हाई समझते हो? आदमी ख़ुद ही तमाशा भी है और अपनी हालत का तमाशाई भी। मंद धार वाले चाकू से ख़ुद का संहार करता है, फाँक–फाँक करता है, तड़पता है, फिर ख़ुद को समेटकर फिर संहार करता है तड़पने के लिये, फाँक फाँक होने के लिये, बुलाता है, आवाज़ देता है, चीख़ता है, पर क़ैद–तन्हाई जो है, इसलिये कोई उसकी आवाज़ और आह नहीं सुन सकता, सिवाय उसके जिसने उसके लिये क़ैद मुक़र्रर की है।

फिर मुर्शिद ने अपने पाँवों को सम्पीड़ित करते हुए कहा– "जाओ, तुम्हारा क़ैदखाना बदल गया है, जाओ।"

वह दिन और यह दिन मैं मुर्शिद के पूर्वानुमान के अनुकूल क़ैद–तन्हाई में हूँ। आदमी को पकड़ पकड़ कर अपने घाव दिखाता हूँ। अपनी फाँकें पायल की तरह पैरों में बाँधकर खूब नाचता हूँ। तुम्हारा नाम पुकार पुकारकर बहुत शोर करता हूँ। पर सब निरर्थक! आदमी मेरे बाजू से यूँ गुज़र कर जाते हैं जैसे कि मुझे न देख सकते हैं न सुन सकते हैं। पर तुम मुझ पर दया करो नर्तकी, बस एक बार मेरे हाथों पर अपने होंठ रख दो। सिर्फ़ एक बार नर्तकी। बस एक बार।

नर्तकी चुप! काले पटसन में लिपटा परदे में मुँह लगाए बैठा रहा। फ़जर की अज़ान से बस कुछ पल पहले आहिस्ते, आहिस्ते परदे में से मुँह निकाला,

उसके होठों पर सालों की तिश्नगी के निशान ठहर गए थे जैसे उसने मदिरा पीते पीते उंडेल दी हो।

आख़िर कहा– "यह भी बेकार है, यह भी विनाशी है, यह भी ख़ाक है। बस एक बात समझ में नहीं आती कि जब हर किसी का रुख़ वह अपनी ओर मोड़ना चाहता है तो फिर वह इतनी कोशिशें, बहाने, उलझन भरे घुमाव क्यों करता है? ख़ाक ही तो है, बस उस पर अपने पाँव धर दे पर पता ही नहीं पड़ता कि उसे ख़ुद के साथ आदमी का इश्क चाहिये या आप ख़ुद आदमी के इश्क में जकड़ा हुआ है!"

बाहर फ़जर की अजान सुनाई पड़ रही है। नर्तकी ने साँस ली और किसी हारे हुए सिपाही की तरह उठते हुए कहा– "जैसे उसकी मर्ज़ी! फ़जर नमाज़ कज़ा (दुर्भाग्य) न बन जाए, मिलन की घड़ी बस घड़ी भर के लिये आती है, कहीं चूक न जाए। विछोह न आदमी से सहा जाता है न उससे।"

नर्तकी ने पाँव उठाए और स्टेज से उतर गई। उस शख़्स का किरदार भी पूरा होने को आया और वह स्टेज से उतर आया।

और पर्दा गिर गया।

नया मंज़र शुरू होने तक। ❑

एक गुनाह का अंत

◆लियाक़त रिज़वी

गर्मियों की एक मामूली सी रात थी। रात ज़मीन का लिबास बनी है। तारों से भरा आसमान और दक्षिण की हवा में जेल की इमारत, अचानक याद में बसी किसी नागवार बात की तरह खड़ी है। ड्यूटी पर मौजूद संतरी अपनी बेईमानी की रोशनी में निद्रालु जिस्मों के साथ आँख मिचौली का खेल खेलने में मसरूफ़ है।

अगर चाँदनी रात होती तो पूरब वाली मंज़िल के गुम्बज में खड़े सिपाही की सिगरेट में से निकलते धुएँ को हवा के साथ खेलते, अच्छी तरह देख सकते थे। फिर भी तारों के कम उजाले में जब सिपाही सिगरेट का कश लेता है तो सिगरेट सुलग कर बुझ जाता है। ऐसे ही वह भी भीतर ही भीतर सुलग रहा है, और एक पल में वह भी समाप्त हो जाएगा फिर भी पता नहीं कितने सालों तक सुरमई वक़्त के किनारे, फीके रंग की जेल की इमारत अभी तक ज़िन्दा है, जिसकी एक तन्हा कोठरी में वह क़ैद है। उसे पता है कि कोठरी के धूप अंधेरे के सिवा, वहाँ एक सीलन भरा मटका भी है, जो बेगुनाह होते हुए भी क़ैद है और बिलकुल बूढ़ा हो चुका है।

हालांकि वह अंधा है फिर भी देख सकता है कि कोठरी का दरवाज़ा कहाँ है और वह ऐसे दरवाज़ों पर खुलता है जो दुनिया की ओर खुलते हैं – वह दुनिया जो आज़ाद और रोशन है वह रोशनी उसने कभी भी अपनी आँखों से नहीं देखी है, पर उसने उसे अपने पूरे वजूद से महसूस किया है। यह अलग बात है कि उसके पास उस रोशनी को साबित करने के लिये पर्याप्त दलीलें नहीं हैं।

कोठरी का बंद दरवाज़ा इस वक़्त इसलिये भी उसके बेनूर तवज्जो का

केन्द्र है क्योंकि वह जानता है कि उनके आने का समय क़रीब है। अचानक उसे आभास होता है कि उसने सारी उम्र अलग-अलग चीज़ों और इंसानों को फ़क़त उनकी आवाज़ के हवाले से ही देखा है, पर वह इस बात पर ज़रा भी हैरान नहीं है कि बेआवाज़ वक़्त को पहचानने का कौशल भी उसे इस अंधी ज़िंदगी ने सलीके से सिखाया है।

वह पैदाइशी अंधा है। उसका बाप नशे और ग़ुरबत के कारण वक़्त से पहले ही बूढ़ा हो चुका था और उसकी माँ अपनी जवानी आस-पड़ोस में बर्तन, झाड़ू-पोंछा जैसी बेरहम मेहनत में गंवा बैठी थी। उसकी बहन और दो भाई, बचपन में ही बीमारी की गली से गुज़रते हुए मौत को जाकर मिले। बाक़ी एक बहन है, जो उससे तीन साल बड़ी होगी।

पैदाइशी तौर अंधा होने के कारण वह दुनिया को इस तरह नहीं देख सका था जैसी वह है, फिर भी वक्त गुज़रने के साथ, वह दुनिया को एक तरह से साफ़ शफ़्फ़ाक़ देखने में माहिर हो गया था। उसने इस बात का उल्लेख किसी से भी न किया था कि वह अक्सर इस ख़ौफ़ का शिकार रहता था, जैसे दुनिया अचानक ही उस पर हमला कर देगी और सख़्ती से उस पर इस तरह हावी हो जाएगी जैसे रोशनी अंधेरे पर हो जाती है। हमेशा उसी डर को तवज्जो देता था जो कभी-कभी बाप के गुस्से में भरे, नफ़रत और पुरशोर आवाज़ के कारण, उसके अंधेरे वजूद में डर समाया रहता था और ऐसा अहसास उसके बचपन की याद का हिस्सा बन चुका था। वह बचपन जिसमें उसने बहन के साथ भीख माँगना सीखा था। हक़ीक़त में भीख माँगने का ख़याल सबसे पहले उसे ही आया था। उसका सबब या तो घर में उसके पिता के लड़ाकू स्वभाव के कारण पैदा हुआ था, या फिर ग़ुरबत, जिसके कारण ही उसके पिता बहुत ज़्यादा नशा करते थे और उसी वजह चिड़चिड़े भी रहते थे।

एक दिन उसने बहन से कहा, "बहन, मुझे शहर लेकर चलो!" शहर और उसके छोटे से गाँव के बीच सिर्फ़ एक वीरान रेलवे लाइन बिछी हुई थी, जिस पर से सालों से कोई रेलगाड़ी नहीं गुज़री थी।

बहन ने हैरानी से सावधानी बरतते हुए पूछा था– "भैया, तुम शहर चलकर क्या करोगे? तुम तो देख नहीं सकते?"

“तुम तो देख सकती हो बहन, मैं तुम्हारे कंधे पर हाथ रख कर चलूँगा”, और ऐसा कहकर उसने होठों के बीच एक अंधी मुस्कान के साथ मुस्करा दिया।

“पर तुम शहर में चलकर क्या करोगे?” बहन ने एक उलझे हुए अंदाज में पूछा।

“बहन हम ग़रीब हैं, इसलिये मैं शहर में ख़ैरात लूँगा, लोग मुझे अंधा समझकर ज़रूर ख़ैरात देंगे!” भाई ने सफ़ाई देते हुए कहा। पहले तो बहन माँ–बाप के डर से नहीं मानी, पर फिर उसकी ज़िद और मिन्नतों के कारण राज़ी हो गई।

इस तरह वे दोनों माँ–बाप से छुपकर शहर में भीख माँगने लगे। यह बात माँ–बाप से छुपी रहे यह नामुमकिन था पर उन्होंने भी ज़माने की गर्दिश व मुफ़लिसी की मार के कारण मजबूर ख़ामोशी को गले लगाया। इसके बावजूद भी माँ ने दबी–दबी आवाज़ में ऐतराज़ उठाया कि भीख माँगना अच्छी बात नहीं, लोग क्या कहेंगे वगैरह.... वगैरह...

पर उनके पिता की बेरहम खुशी के आड़े, वह भी चुप हो गई। मवाली बाप के लिये जैसे आमदनी की एक नई राह खुल गई थी। जितने वह भीख में से बाप को देता था, उससे कुछ ज़्यादा हिस्सा वह अपने पास छुपाकर रखता था। इस बात से पिता बिलकुल बेख़बर था, वह फिर भी खुश था क्योंकि अब उसे बीवी से पैसे माँगने की ज़रूरत न रही थी। इस तरह एक मासूम अंधे बालक की ज़िंदगी को एक नया रुख़ मिल गया, जिसके एवज़ में दोनों भाई–बहन एक दूसरे के आधार बन गए। उनकी माँ बेपनाह खुशी के साथ उन दोनों के किस्से सुनाते हुए कहती थी कि कैसे दोनों भाई–बहन में से अगर एक भी बीमार पड़ जाता तो दूसरा भी बीमार लगने लगता। यह बात माँ की नज़र में बेहिसाब प्यार का सबूत थी। ऐसी वारदात को माँ अंधकारमय कथानक के रूप में प्रस्तुत करती थी कि अगर सारा शहर नहीं, तो कम स कम उस आस–पड़ोस में जहाँ वे भीख माँगने जाया करते थे, इस बात से बहुत प्रभावित हुए कि दोनों भाई–बहन मे कितना प्यार है! प्रतिक्रिया के रूप में लोग उन्हें हमदर्दी और स्नेह से ज़्यादा ख़ैरात देने लगे थे।

क़ुदरती तौर पर जब उसकी बहन जवान हुई, तब पहली बार उसे लगा

कि सच में वह अंधा है। उसकी आँखें तो बहन के कांधों में ही दफ़न हुई थीं, जिनपर वह अपना बायाँ हाथ रखकर अंधेरे के अनेक रास्ते चला था। सच्ची बात तो यह है कि अगर दुनिया में किसी मौजूदा सत्य के बारे में यक़ीन के साथ कुछ कह सकता तो वह फ़क़त बहन का दायाँ काँधा ही था।

हालांकि वह बग़ैर आँखों के, असीमित अंधेरे का शहरी था, पर फिर भी आँख वालों के शहर की हवस से बख़ूबी वाक़िफ़ था। यही सबब है कि जब एक दूसरे के बाद उसके माता–पिता दिवंगत हुए, वह बहन को लेकर एक नई चिंता के अधीन हो गया। इसी कारण वह अंधेरा उसके लिये छाँव की बजाय धूप का साया बन गया। उसकी ख़्वाहिश थी कि बहन की किसी योग्य आदमी के साथ शादी करा दे ताकि उसके ऊपर छाया यह अंधेरे का बोझ कम हो जाए। पर मुसीबत यह थी कि उसके रिश्तेदारों में ऐसा कोई योग्य वर नहीं था जो उसकी बहन को खुशी दे पाए। बहन को भी इस बात की भनक नहीं पड़ी कि उसका भाई उसकी चिन्ता से घिरा हुआ है, और न ही इस बात का अंदाज़ा था कि उसका भाई एक अंधा फ़क़ीर था, फिर भी भीख माँगकर एक खुशहाल ज़िंदगी से भी ज़्यादा पैसा जमा किये हुए था।

एक दिन बातों बातों में उसने बहन को बताया कि वह उसकी शादी कराना चाहता है, ताकि वह भाई के फ़र्ज़ को निभा सके और यह भी जताया कि वह उसे इतना दहेज देगा कि लोग दंग रह जायेंगे। बहन ने दुख भरे लहजे़ में कहा– "भैया, मैं कभी भी शादी नहीं करूँगी, क्योंकि मेरे बाद तुम अकेले हो जाओगे। मेरे सिवा कौन है जो तुम्हारी संभाल करेगा?"

उस वक़्त तो उसे बहन का जवाब प्यार का उपहार और उम्र की नातजुर्बेकारी का नमूना लगा फिर पता नहीं कैसे उसे अपनी तन्हाई का अहसास हुआ, जिसने उसके भीतर खुद की शादी का ऐसा बीज बो दिया, जिसकी फ़सल बहुत जल्द ही उसके जीवन की धरोहर बन गई। अपनी चाची के घराने की लड़की से शादी करने के बाद वह बिलकुल बदल गया। पत्नी ने आकर उसके जीवन के अंधेरे को और गहरा व बेमतलब कर दिया।

जो बात अब तक उसकी बहन से छिपी हुई थी, उसको पत्नी ने ज़ाहिर

कर दिया। अंधे पति का जमा किया हुआ पैसा, एक कच्चे और असुरक्षित घर को पक्की इमारत में बदल चुका था, और उस इमारत में उसकी बहन की हैसियत बदल गई थी। अब अंधे भाई को यह भी याद न रहा कि उसकी एक जवान बहन भी है जिसकी शादी का ख़्वाब कभी उसकी अंधी आँखों में बसा था। उसने अपनी शादी के बाद जैसे भीख माँगनी छोड़ दी थी और सदा घर में मौजूद रहता था। धीरे-धीरे जमा की हुई पूँजी, जब ख़र्च हो जाने को थी तो अंधा भाई और उसकी पत्नी परेशान रहने लगे। पत्नी का विचार था कि उसे दोबारा भीख माँगनी शुरू करनी चाहिये पर शादी के बाद साढ़े तीन साल उसने जिस तरह की ज़िन्दगी गुज़ारी, उसे देखते हुए मुश्किल था कि कोई उसे ख़ैरात देगा, क्योंकि सभी जान गए थे कि पैसे के मामले में वह एक मालदार आदमी है।

जब अंधे ने पत्नी की भीख माँगने वाली राय को नकार दिया तो पत्नी ने उसके सामने एक और तरकीब रखी- जो भी अपनी बहन 'सारा' का रिश्ता किसी अमीर से करे जहाँ से कुछ पैसे वसूल होने की आशा हो। वह ख़ुद भी तो ग्यारह हज़ार रुपये देकर उसकी पत्नी बनी थी। अंधे को यह विचार पसंद आया।

हक़ीक़त में 'सारा' यानी अंधे की बहन, एक सदाचारी लड़की थी, जिसने ज़िंदगी के संताप और यातनाएँ सब के साथ झेली थीं, पर इस बार न जाने उसमें इतनी हिम्मत कहाँ से आई कि उसने पैसों पर बिकने से इन्कार कर दिया। बहन के इन्कार पर पहले तो अंधा चुप रहा पर पत्नी के कहने पर उसके रवैये में सख़्ती आने लगी।

जब अंधे की पत्नी ने साठ साल के एक सेठ से 'सारा' के रिश्ते के एवज में पच्चीस हज़ार रुपये लेकर विदाई की तारीख़ तय कर दी, तब भी सारा अपने नकारात्मक फ़ैसले पर टिकी हुई थी। वह अपनी भाभी के साथ किसी भी मामले पर बातचीत करके उलझना नहीं चाहती थी, पर अपने भाई को ज़ाहिर ढंग से धमकी दे दी थी कि अगर वह उसे बेचने की हठ पर टिका रहा तो वह घर छोड़कर मुर्शिद की हवेली पर जाकर पनाह लेगी। अफ़सोस कि 'सारा' को इस बात का अनुमान न था कि उसकी धमकी का अंधे भाई की सख़्ती और ज़िद पर क्या असर पड़ेगा?

वह सोमवार का दिन था। विदाई में अभी चार दिन बाक़ी थे। भाई ने सारा को राज़ी करने की आख़िरी कोशिश की थी पर राज़ी होने की बजाय सारा ने अपना सारा सामान समेटा और हवेली पर जाने की तैयारी करने लगी। दुखी दिल से वह भाई को अपने बचपन के दिनों की बातें याद दिलाती रही जो अब उनके बीच के नाजुक रिश्ते की खंडहर बनकर रह गई थी। कही अनकही बातें अधूरी रह गईं जब भाई ने अपनी पत्नी के साथ मिलकर सारा का गला घोंटकर बेदर्दी से उसे मार दिया।

सारा के मृत जिस्म को कुछ पता न पड़ा कि वारदात पर सभी सबूत मिटाने के लिये उसकी भाभी ने बेदर्दी से उसके जवान जिस्म को इस्तरी से जलाया था। पर किसी तरह पुलिस असली हक़ीक़त तक पहुँची और उसकी भाभी को उम्र क़ैद की सज़ा और भाई को फाँसी की सज़ा मिली।

और उस फांसी की सज़ा पर अमल करने के वक़्त जेल की कोठरी में आज उसके अंधे इंतज़ार को कुतर रहा है।

अंधा होने के बावजूद उसे मालूम है कि जेल में संतरी के आने का वक़्त नज़दीक आ गया है, जो उसे फाँसी के घाट तक ले जायेगा। क्या फ़र्क़ पड़ता है अगर उसकी आँखें नहीं हैं। वक़्त की आहट को पहचानने के लिये आँखों की ज़रूरत नहीं पड़ती।

वह बेनूर आँखों से पल-पल अपने अतीत में जाकर लौट आता, शायद बहन के क़त्ल पर वह पछताना चाहता था, पर फाँसी का खौफ़ उसे इतनी मोहलत नहीं देता। कुछ दूर से आती भारी क़दमों की आवाज़ उसे अपनी फाँसी का यक़ीन दिलाती है और उस का हृदय विलाप करने लगा।

जो सेवक, उसे फांसी के फंदे तक ले जाने के लिये आए, उन्हें कोठरी में फ़क़त अंधे की लाश मिलती है। ❑

चौराहे से उत्तर की ओर

◆अब्दुल रहमान सियाल

सुबह का वक़्त है, बस से उतरकर रोज़ की तरह चार कमरों तक महदूद उस कॉलेज की बिल्डिंग की ओर रुख़ किया और हर रोज़ की तरह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ फलांगते हुए क्लास रूम में पहुँचकर किताब कॉपियों को सीट पर फेंकते हुए बरांडे में आकर खड़ा हो गया। यहाँ वहाँ नज़र फिराई, देखा अभी तक कॉलेज का दरबान भी नहीं आया था। रोज़ की तरह सामने 'कोर्ट व्यू' बिल्डिंग पर लगे अंग्रेज़ी पोर्स्टस को चाह के साथ देखने लगा, कि उनमें कौन से नये पोस्टरों का इज़ाफ़ा हुआ है। जिस्म को उभारते पोस्टर शायद परीक्षा लेने के लिये लगाये गये हैं। पोस्टरों के पीछे कोर्ट के बाहर झोपड़ियों के नीचे मुनीमों की टेबल व कुर्सियाँ ऊपर से देखीं जो रोज़ की तरह उलट कर रखी गई थीं। यह सब देखने के बाद नीचे उतर आया। कॉलेज की बिल्डिंग का चक्कर लगाया पर कोई भी ऐसा आदमी नहीं पहुँचा था जिस के साथ बैठकर पल भर भी वक़्त गुज़ारा जा सके। कभी कभी कोई मुझसा सीधा-सादा कोई स्टूडैंट आ जाता तो फिर अच्छी कचहरी हो जाती थी और काफ़ी समय भी गुज़र जाता था।

पर आज कोई भी स्टूडैंट नहीं आया था। बस मैं अकेला ही था। पर अकेला बोर हो रहा हूँ क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अभी इन्हीं ख़यालों में गुम था कि अचानक घड़ियाल की घंटी बज उठी। नज़र उठाकर देखा तो साढ़े सात बजे थे। टाइम देखकर और भी ज़्यादा बोर होने लगा। कॉलेज शुरू होने में पूरा एक घंटा बाक़ी था। पहला पीरियड मिस जमाल का होता है। वैसे तो पहला पीरियड अटैंड करना किसी को भी याद नहीं होता था। अक्सर कई स्टूडैंट्स का मिस हो जाता था। पर जब से मिस रोज़ी जमाल हमारे कॉलेज

में आई हैं, तब से स्टूडैंट्स क्लास शुरू होने के पहले आ जाते हैं। हर एक भली-भांति तैयार होकर आ जाता।

क्लास शुरू होने में पूरा एक घंटा बाक़ी था। मन में बहुत गुस्सा भर गया। जब कुछ और न कर सका तो मन ही मन में स्कूल बस के ड्राइवर को पहले तो कोसने लगा और फिर गालियाँ देने लगा, क्योंकि जो ठंडक गालियाँ देने से मिलती है, वह कोसने से नहीं मिलती। साला..... कहीं का। सुबह साढ़े पाँच बजे नींद से उठना पड़ता है, सिर्फ़ स्कूल बस तक पहुँचने के लिये। बेबस होकर स्कूल की सीढ़ी पर एक खंभे का सहारा लेकर बैठ गया। दस-पंद्रह मिनट गुज़र गए पर कोई भी दोस्त नहीं आया जिसके साथ बैठ कर वक्त गुज़ारने की ख़ातिर कोई इश्क की दास्तां की बात करूँ। दिल में ख़याल आया, किसको फ़ुर्सत है कि साढ़े सात बजे कॉलेज आए! शहर वालों के लिये तो जैसे सूरज अभी भी निकला ही नहीं है। आठ के पहले कौन आता है? जहाँ भी नज़र जाती हैं वहाँ वीराना दिखाई देता है, जैसे किसी राक्षस के डर से लोग घरों में छुपकर बैठे हों। स्कूल की सीढ़ी से उठकर बाहर की बड़ी गेट पर आकर खड़ा हो गया। हलका यातायात प्रवाहित हो रहा था।

रोज़ वक़्त गुज़ारने के लिये कहीं न कहीं राहों पर निकल पड़ता हूँ। आज भी फिरदोस सिनेमा से होता हुआ चौराहे पर आकर खड़ा हो गया। दिल में यही पीड़ा रही कि सुबह के समय शायद किसी अपने का दीदार हो जाए पर वहाँ भी यही लगा जैसे कोई राक्षस सुबह-सुबह वहाँ से होकर गया हो। एक मैं ही था जो इस वक़्त ऐसी बेकार बातें सोच रहा था। जाने क्यों आज बेचैनी हद से ज़्यादा बढ़ गई थी।

आज भी क़दम अपने आप किसी ओर बढ़ने लगे। चौराहे से होकर सीधा 'सीमाब ड्राई क्लीनर्स' के सामने से फिरते हुए उत्तर में जाती गली की ओर बढ़ा। ऐसे भी दिन थे जब मैं हर रोज़ उस गली में से गुज़रता था, पर आज बहुत दिनों के बाद उस गली में दाख़िल हुआ हूँ। गली में नज़र दौड़ाई, और कुछ तो नहीं, बस राह में कोई पत्थर पड़ा था। फ़ुटबॉल का शौक़ीन हूँ, आदत से मजबूर होकर जूते से एक ज़ोरदार ठोकर लगाई। पत्थर उछलता हुआ दूर जा पहँचा। गर्दन उठा कर देखा तो वह सामने किसी दरवाज़े

पर खड़ी लड़की के क़रीब जाकर गिरा था। बहुत शर्मसार हुआ। दिल में सोचा– 'लड़की क्या सोचेगी... शायद यही सोचेगी कि पागल हूँ.... या यही कि मैं उसे छेड़ने के लिये कर रहा हूँ। सोचा.... कहीं अपने माता–पिता को बुलाकर मार न पिटवाए कि दिमाग़ से इश्क का धुआँ निकलता रहे। पीछे हटने की कोशिश की। दिल में आया कि दौड़कर वहाँ से भाग निकलूँ ताकि वह मुझे देख भी न पाए। पर जाने क्यों एक क़दम भी पीछे हटा न सका। सामने बैठी लड़की अपने ख़्यालों में गुम थी। सफ़ेद पोशाक और सर पर काले रंग की रजाई ओढ़ रखी थी। कालापन तो मायूसी की निशानी है या फिर प्यार में शिकस्त की, पर आजकल काला कपड़ा आमतौर पर फैशन की माँग रहा है, फिर चाहे क्यों न पहनने वाला ख़ुद भी कोयले सा काला हो। लड़की ने गर्दन उठाकर मेरी ओर देखा.... यह चेहरा तो सौंदर्य का प्रतीक लगा, जैसे जाना–पहचाना, जैसे देखा–भाला। उसने मुझे देखते ही शायद पहचान लिया और मैं घबराहट के मारे गर्दन ऊपर उठाकर बिल्डिंग पर लिखा 'इंगलिश टीचिंग स्कूल' का नाम पढ़ने लगा।

दूसरी बार निहारा। दिल का दर्द उमड़ने लगा। पुराने ज़ख़्म जैसे रिसने लगे। ख़ुद–ब–ख़ुद बिना किसी इरादे वहीं खड़े सोचता रहा कि आगे चला जाऊँ? बात करूँ या न करूँ? क्या करूँ क्या न करूँ? वह मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया, शायद मेरा हालत पर। मैं अभी भी सोचों में गुम था। फिर यहाँ वहाँ देखा कि कोई देख तो नहीं रहा। पर कोई भी नहीं था। वह अपने स्कूल के दरवाज़े के पास सीढ़ी में बैठी है।

अभी तक कोई भी बच्चा नहीं आया था। हिम्मत नहीं होती कि मैं उससे बात कर सकूँ। शांत खड़ा हूँ।

"आज कैसे सवेरे सवेरे राह भूल गए हो?" ख़ुद बात की पहल करके उसने मेरी मुश्किल आसान कर दी।

"बस! आज कोई दक्षिण की हवा खींच लाई है, नहीं तो आने का कोई इरादा नहीं था।" मैंने कहा।

"हवाएँ अगर किसी को अपने साथ ले आतीं तो फिर शायद मैं भी किसी तरफ खिंची चली जाती।" उसने कहा।

"हवाएँ हर इंसान को तो नहीं खींचतीं, वे सिर्फ़ कमज़ोरों को खींच

कर ले जाती हैं।" मैंने कहा।

उसने घूरकर मेरी ओर देखा, कुछ मुस्करा दिया और फिर यहाँ वहाँ ऐसे देखा जैसे किसी को ढूँढ रही हो। आँखे जैसे किसी को देखने के लिये आतुर थीं।

"किसे ढूँढ रही हो?" मैंने पूछा।

"उस गुज़रे वक़्त को ढूँढ रही हूँ जब मैं और तुम...." उसने बात आधे में काटते हुए कहा और फिर मुझपर अपनी नज़रें गाढ़ दीं जैसे पूछ रही हो - कहाँ थे? कैसे थे?

मेरे पास उसके किसी भी सवाल का जवाब नहीं था।

"क्या देख रही हो?" मैंने फिर पूछा।

"देख रही हूँ कि.... कितना बदलाव आया है उन आँखों में जो हमेशा ख़ुमार में डूबी रहती थीं और वह चेहरा जो हमेशा दुखों के बावजूद भी मुस्कराता रहता था, वह सब कुछ आज पता नहीं क्यों...." वह आगे कुछ भी न कह पाई। मैं शांत खड़ा रहा। कुछ कहना चाहता था, कुछ पूछना चाहता था, कुछ बीते हुए समय को दोहराना चाहता था। पर वे सभी बातें कहनी व्यर्थ थीं। किससे बात करता? उससे, जिसकी डगर मुझसे बिलकुल अलग थी। जिसकी मंज़िल मुझसे बहुत दूर थी।

"कितने दिनों के बाद मिले हो, फिर भी ख़ामोश!" उसने पूछा।

"बात करने के लिये कुछ बाक़ी बचा भी नहीं है।" मैंने कहा।

"जिन के पास बात करने के लिये कुछ नहीं बचता, उन्हें बीते हुए कल के कुछ पल और कुछ यादें ज़रूर तड़पाती हैं।" उसने कहा।

"जब तड़पने की कोई संभावना ही न हो तो माज़ी के वो पल, वो यादें कहाँ तड़पेंगी?" मैंने कहा।

"पता नहीं क्यों, वक़्त अपनी रफ़्तार के साथ-साथ इन्सान को भी बदल देता है।" उसने कहा।

"वक़्त अगर इन्सान को बदल देता तो फिर शायद आज कोई किसी को पहचान न पाता।" मैंने कहा।

वह ख़ामोश बैठी रही। पता नहीं क्यों उसने मुझसे वह सब कुछ फिर पूछना चाहा, जो गुज़र चुका था। पर मैं नहीं चाहता था कि माज़ी को फिर

से याद किया जाय। हमारी राहें अलग थीं और उन राहों पर चलने वाले दूसरे थे। हमारे हाथों की कनिष्ठिकाएँ दूसरों के हाथों में थीं। शायद हम बूढ़े हो जाएंगे तब भी हमारी लगाम हमेशा औरों के हाथों में होगी।

दूर तक नज़र फिराई, बच्चों ने स्कूल में आना शुरू कर दिया था। मैं उस के पास खड़ा रहा, उसकी तरह मैं भी ख़ामोश था। हमारे बीच में वहीं एक सी ख़ामोशी थी। दूर से शायद कोई और टीचर आ रही थी और मैं घबराकर बिना कुछ कहे आगे बढ़ा। पता नहीं क्यों वक़्त ने उसे समुद्र की एक लहर की तरह किसी दूसरे किनारे पर फेंक दिया है। हमारे बीच में फ़ासला इतना बढ़ गया है कि मैं उस तक पहुँच नहीं पाया।

उसे छोड़कर मैं आगे बढ़ा। सीमाब ड्राईक्लीनर की ओर से चौराहे के गिर्द घूमकर कॉलेज की ओर बढ़ा। कुछ पल पहले वही क़दम जल्दी जल्दी चौराहे की ओर बढ़े थे, पर अब वह चुस्ती बिल्कुल ख़त्म हो गई थी। ऐसे महसूस कर रहा हूँ जैसे सारी दुनिया का बोझा मेरे कंधों पर आकर लद गया हो। कॉलेज की बाहर वाली बड़ी गेट से अंदर दाखिल हुआ। इससे पहले सुबह जहाँ वीरानगी के सिवा कुछ भी नहीं था, अब वहीं चहल पहल लगी हुई थी। स्कूल और कॉलेज के स्टूडैंट अपनी अपनी कक्षाओं में जा चुके थे। मैं कॉलेज की सीढ़ी से चढ़ते हुए वरांडे में दाख़िल हुआ। पौने नौ बज चुके थे। मैं अपनी कक्षा के पिछले दरवाज़े से इजाज़त लिये बिना चुपचाप जाकर पिछली सीट पर बैठा। मिस जमाल उस वक़्त पढ़ा रही थी और मैं अपनी सोचों में गुम था। वे बातों में चालाक और चुस्त ज़रूर है पर पढ़ाने में इतनी होशियार नहीं। अंग्रेजी में मास्टर्ज़ की डिग्री है उसके पास।

कॉलेज के सभी स्टूडैंट मिस रोज़ी जमाल का नाम लेकर आहें भरते हैं, पर मुझे वह बिल्कुल नहीं भाती.... शायद ग़ैर होने के नाते और अपने फैशन के तौर तरीक़े और नखरों के कारण। पूरे कॉलेज की तीन लेडी टीचर्स में से सिर्फ़ एक टीचर मेरी आदर्श हैं, क्योंकि वह हमेशा चुप रहती हैं, मेरी तरह, या शायद अपनी सी लगती है।

क्लास में मिस जमाल की आवाज़ संगीत की तरह फैल रही है और मेरी गर्दन ज़मीन की ओर झुकी हुई थी। किसी गहरी सोच में डूबा हुआ था। क्लास में लेक्चर की तरफ़ कोई ध्यान ही न रहा। सीट पर खुद को

मवाली की तरह आज़ाद छोड़ दिया है। सोचों का सिलसिला जारी है। आज की मुलाक़ात अनोखी और अचानक हुई, बिलकुल सपनों की तरहं

'O Mr. learn manners properly.' मिस जमाल की आवाज़ ने अचानक सपनों से जगा दिया।

आज भी कल की तरह बस ने जल्दी लाकर छोड़ दिया है। सब कुछ रोज़ की तरह सामान्य है। मैं कॉलेज की इमारत से निकलकर चौराहे की ओर बढ़ता हूँ, कहीं-कहीं सोचों में खो जाता हूँ- मैं आज उससे मिलूँ या न मिलूँ? सारी रात जागते उसी सोच में गुज़ारी है। कोई फ़ैसला नहीं कर पाया हूँ। चौराहे पर खड़ा हो जाता हूँ। एक दो क़दम आगे बढ़ता हूँ। हाँ, वह मेरा इंतज़ार करती होगी, मैं मन में सोचता हूँ। हाँ, मेरा इंतजार करती रहे। जब संजोग ही नहीं होना तो फिर क्यों किसी से मिला जाय। वह अलग, मैं अलग। फिर मिलना कैसा? मेरे मिलने से कहीं उसकी ज़िन्दगी ज़हर न बन जाए। मैं उसके लिये सोचता रहता हूँ। आज अपने आप ही उत्तर की तरफ जाने की बजाय दक्षिण की तरफ़ निकल आया हूँ। यहाँ कोई भी स्कूल नहीं, कोई भी लड़की नहीं। सिवा गैरेज के जहाँ लड़के और मिस्तरी हैं जो सुबह से आते ही ठक ठक करने लग गए हैं।

एक कार मेरे पास से गुज़रते हुए थोड़ा आगे जाकर गैरेज के पस रुक जाती है। ड्राइवर दरवाज़ा खोलकर मिस्त्री से बात करने लगता है। कार की पिछली सीट पर कोई सुंदर लड़की बैठी है। अपने आप से आँखें उठ जाती हैं। मैं आंखे रगड़ने लगता हूँ और ग़ौर से देखने की कोशिश करता हूँ। आँखों पर विश्वास नहीं होता, नज़र वहीं अटक जाती है। पुष्टि करना चाहता हूँ वह बैठी है। तिरछे कोण से चेहरा नज़र आ रहा है। पता नहीं उसने भी मुझे देखा है या नहीं? उलटे पैर लौटता हूँ जैसे किसी ने बदन को डस लिया हो। दीर्घ श्वास की क्रिया जारी रहती है। लगता है उसने मुझे देखा नहीं है, वर्ना मुड़कर मेरी ओर ज़रूर देखती। पर वह कार किसकी हो सकती थी? कार और अध्यापिका- परिकल्पना नहीं कर पाया। अब दृढ़ निश्चय कर लिया है कि उत्तर की तरफ़ चला जाऊँगा। बस यही दो भाग रह गए हैं। पर अगर वह उस तरफ़.... सोच कर चौंक उठता हूँ, शायद मैं उससे डर गया हूँ-

मेरे लिये हर दिशा सीमित हो चुकी है। आज मैं ड्राइवर की बजाय खुद को कोसने लगता हूँ- काश! मैं उत्तर की तरफ़ न गया होता। अपने आप से बतियाता हूँ।

मैं उससे बच नहीं सकता। ऐसा लगता है, मैं सारी उम्र उससे दूर भागता रहूँगा, पर वह किसी न किसी मोड़ पर ज़रूर आ पहुँचेगी। ❑

मरा हुआ इन्सान

◆कृष्ण खटवाणी

उसने सोचना छोड़ दिया है। कोई भी घटना उसके मन पर असर पैदा नहीं करती। उसका दिल सूखी हुई रोटी की तरह है। वह देखते हुए भी नहीं देखता, शायद उसकी आँखें छायाचित्र निकालने की शक्ति खो बैठी हैं। वह नाम भी भुला बैठता है– दोस्तों के नाम, रिश्तेदारों के नाम, कभी तो घर के सदस्यों के नाम भी उसे याद नहीं रहते हैं। कभी तो वह अपनी पत्नी की तरफ़ भी अजीब निगाहों से देखता है कि वह कौन है? उन दोनों का नाता क्या है? उनके बीच में वह नाता कैसे और क्यों हुआ? कभी वह अपने एक कमरे वाले घर की ओर देखता है। उसके तसव्वुर में वे बड़े बंगले घूमते हैं जो चौड़े रास्ते के दोनों तरफ़ हैं। वह हैरान होता है कि यह एक कमरा उसका घर क्यों हुआ? वह बाग़ वाला बंगला उसका घर क्यों नहीं बना? पर उसके पास अपने इन सवालों का एक भी जवाब नहीं होता। उसकी पत्नी उसे ऐसे प्यार क्यों नहीं करती जैसे किसी ज़माने में वह हिन्दी फ़िल्मों में देखता था। उसकी पत्नी तो क्या, उसकी माँ भी अब उसे प्यार नहीं देती। शायद वह उसे अपना बेटा होने के लायक नहीं समझती है, इसीलिये बेटी के पास रहती है। उसका छोटा बेटा उसकी ओर ऐसी अजीब निगाहों से देखता है जैसे वह कोई मशीन है, जिसे जंग लग गया है, बेकार है, किसी के भी काम के लायक़ नहीं है।

वह अपने आप को धिक्कारने लगा.... उसका ख़ुद पर से विश्वास उठ गया है। कभी तो उसे शक़ होता है कि वह ज़िंदा है या मरा हुआ? उसे सिर्फ़ यह अहसास है कि उसके पास फ़ैसले करने की शक्ति नहीं है, उसे कोई दूसरा चला रहा है।

"सुन रहे हो, कल दूधवाला बिल के लिये दो बार लौट गया है.... और अनाज भी फ़क़त एक दिन का बाक़ी बचा है।"

वह सुनता है पर समझता नहीं है। वह भावहीन हो गया है और भावहीन के लिये सुनने और न सुनने में कोई फ़र्क नहीं होता। पर हमेशा तो ऐसा नहीं था वह। उसे तो वे दिन याद ही नहीं हैं। वह भुला बैठा है कि कभी वह ज़िंदा था, पर उसकी पत्नी कभी-कभी आंगन में बैठकर पड़ोस के बच्चों को खेलते हुए देखकर वे दिन याद कर लेती है। वह ऑफ़िस से लौटता था तो उसके होंठों पर मुकेश का गीत होता था। जब उसकी माँ रसोई घर में या स्नानघर में हुआ करती थी, तो वह जल्दी से पत्नी के गाल को चूम लेता था। इतवार के दिन वह सुबह ही बेटे को मुकेश का राग सिखाता था और शाम को वे बस में चढ़कर पिक्चर देखने जाते थे। तब उसकी माँ उसका सदका उतारती थी। पड़ोसी ख़ुश होकर आवाज़ देते- "आज एक कप चाय पीकर जाओ।" जब वह बेटे के लिये बैट-बॉल लेकर आया तो पड़ोस के सब बच्चे इकट्ठा हो आए और उसकी तरफ़ ऐसे देख रहे थे जैसे सोच रहे हों कि काश! वह उनका बाप होता! तब सभी उससे प्यार करते थे, सब उसे इज़्ज़त देते थे।

एक दिन वह शाम को ऑफ़िस से घर आया तो बेटे के साथ खेलने की बजाय कुछ सोचता रहा।

पत्नी ने चाय उसके हाथ में थमाई और सामने आकर बैठी।

"क्यों आज ऑफ़िस में कुछ हुआ क्या?"

वह चौंक उठा फिर पत्नी की ओर देखते हुए कहा- "आज ऑफ़िस में एक अजीब बात हुई। एक ठेकेदार आया था और मुझे दो हज़ार देने लगा, जैसे मैं उसका बिल बिना जांच के पास कर दूँ।"

"दो हज़ार!" उसकी पत्नी ने हर्षित होते कहा- "फिर हम रेडियो लेंगे और कपड़ों के लिये अलमारी भी तो चाहिये।"

सुनकर वह कुछ हैरान हुआ और कहने लगा- " पर मैंने पैसे उसे लौटा दिये यह कहते हुए कि मैं रिश्वत नहीं लेता।"

पत्नी के चेहरे पर पल-भर के लिये निराशा झलकी, फिर ख़ुश होकर कहा- "तुमने अच्छा ही किया, रिश्वत की कमाई कहाँ रास आती है! सच

की कमाई से धीरे-धीरे घर बन जाएगा।" और फिर लफ्ज़ों पर ज़ोर देते हुए कहा- "सच की कमाई का एक रुपया झूठ की कमाई के सौ रुपयों के बराबर है।"

उसका चेहरा खिल उठा, "तुमने मुझे हिम्मत दी है। पता है, मेरे इन्कार करने पर उस ठेकेदार ने ऐसे चेहरा बनाया जैसे वह मुझे कच्चा खा जाएगा।"

उसे यह बात याद न रही और उसकी पत्नी को भी। पर एक दिन अचानक उसके ऑफ़िस की मेज़ को सी.आइ.डी के आदमी घेरकर पूरी तलाशी लेने लगे। उसके आश्चर्य की हद न रही जब मेज़ की दराज़ में से दो हज़ार के नोट निकले। वह कोई भी युक्त जवाब नहीं दे पाया। उसके खिलाफ़ केस दर्ज किया गया और जांच-पड़ताल के बाद उसे नौकरी से निकाल दिया गया।

उसके पड़ोसी कहने लगे- "देखा, दिखाता ऐसे था जैसे कुछ जानता ही नहीं।"

किसी ने कहा- "आजकल कौन ईमानदार है? सारी दुनिया तो चोरों से भरी हुई है।"

उसकी माँ ने कहा, "मुझे यह पता नहीं था कि तू इतना भोला-भाला है। इस ज़माने में कौन रिश्वत नहीं खाता, हाथ में आए पैसे भी गंवाए और संकट में भी पड़ गए।"

उसकी पत्नी को भी अब उसकी अक्ल पर शक़ होने लगा और वह ख़ुद भी अपने को संदेहात्मक निगाहों से देखने लगा। ख़ुद पर से उसका विश्वास टूटने लगा। रात को भयानक ख़्वाब उसे घेरने लगे। दिन भर वह दूसरों की निगाहों में ग़लत मतलब पढ़ने लगा। धीरे-धीरे घर में हर एक बात दुश्वार होने लगी।

वह हर रोज़ सुबह नौकरी की तलाश में निकलता था और रात को दर्द से सुन्न टाँगों के साथ वापस लौटता था। जान-पहचान वाले उसे शकी नज़रों से देखते थे और अनजाने जानकारी के बिना नौकरी देने को तैयार न थे। देखकर उसे हैरत हुई कि इन्सान का अपने आप को बेचना कितना मुश्किल है, कोई भी उसे ख़रीदने के लिये तैयार न था।

एक दिन बाज़ार में उसने उसी ठेकेदार को कार में बैठे हुए देखा। वह सिगरेट पी रहा था। बगल में उसकी ख़ूबसूरत पत्नी, पर्स में से आईना निकाल

कर अपनी लिपस्टिक ठीक कर रही थी। पीछे बैठी आया की गोद में ठेकेदार का बच्चा चॉकलेट खा रहा था। वह कुछ देर तड़पती आँखों से ठेकेदार की तरफ़ देखता रहा। उसके अंदर बैठे ज़िंदा इन्सान ने चाहा कि दौड़कर ठेकेदार की गर्दन पकड़ कर कार में से नीचे उतार कर उसके पेट पर दो-तीन लातें मार दे, पर उसके भीतर का मरा हुआ इन्सान ज़िन्दा इन्सान पर हावी हो गया और वह एक हारे हुए इन्सान की तरह दुम दबाकर एक तरफ़ चला गया।

कभी-कभी उसके दिल को तसल्ली मिलती थी, जब वह उन सड़कों से गुज़रता था जहाँ उस रास्ते के आवासी रहते थे। वह ख़ुद को दिलासा देता था कि उसके पास फिर भी रात को सोने के लिये कोठरी है। पर यह बिचारे तो दिन रात खुले आसमान के नीचे रहते हैं।

पर एक दिन वह घर का मालिक न रहा। जब घर में खाने के लिये दाना न रहा, उसकी पत्नी, उसका बेटा उसकी तरफ़ यूँ देखने लगे जैसे वह रास्ते का आवारा कुत्ता है जो बिना मतलब उनकी ज़िंदगी में घुस आया है। उन निगाहों ने उसे ध्वस्त कर दिया। उस रात उसकी माँ ने उसकी बहन को ससुराल में से बुलवाया था। माँ ने बेटी से कहा- "अब तुम ही इस उजाड़ घर की उम्मीद हो। तुम्हारा पति समर्थ हैं। उससे कह कर अपने भाई को कहीं नौकरी पर लगवा दो।"

बेटी ने ऊँचे स्वर में कहा- "अम्मा, नौकरियाँ तो कई मिलेंगी, इन को सारा शहर जानता है और कोई भी उन्हें इन्कार नहीं करेगा। पर किसी को भी कहते हुए डर लगता है। कहीं दादा वहाँ भी ग़बन न कर दें। फिर तो हम कहीं के न रहेंगे।"

यह वाक्य उसने भी सुना और उसकी पत्नी ने भी और घर के सदस्यों ने भी। उसकी हालत ऐसी थी कि वह शर्म के मारे दीवारों की ओर भी नहीं देख सका। पर उसकी पत्नी को वह दिन याद आया जब उसकी सास बेटे से कह रही थी- "बेटे, इस तरह घर फूँककर बहन को क्यों दे रहे हो? वादे से एक पैसा भी ज़्यादा देना नहीं चाहिए।"

बेटे ने हंसकर माँ से कहा था- "मेरी एक ही तो बहन है अम्मा, इसकी शादी धूमधाम से करने दे। मेरी बाजुओं में दम है, फिर कमा लूँगा।"

उस रात घर में खाने के लिये कुछ नहीं था और बहन हमदर्दी जताने

के लिये माँ को अपने घर ले आई।

रात को घर में बत्ती नहीं जली। उसकी पत्नी शाम से रो रही थी। कभी उसका रोना सिसकियों में बदल जाता तो कभी वह अचानक बादलों की तरह विलाप करती– "इससे तो बेहतर होता जो मैं मर जाती। किस मुँह से इस घर में बैठे हो, किसी के सामने मुँह भी नहीं उठा सकते।"

रोते–रोते उसकी पत्नी वहीं सो गई जहाँ वह बैठी थी। वह आधी रात तक वहीं दीवार के सहारे बैठा रहा, फिर लेट गया। पर सारी रात आँखें फाड़ कर अंधेरे में देखता रहा। उसमें सोचने की ताक़त न रही थी। पर अस्त व्यस्त डगमगाते कुछ ख़याल उसके दिमाग़ में चक्कर काटते रहे। उसकी माँ उसे छोड़कर गई क्योंकि उसकी बहन के पास पैसा है। क्या उसकी पत्नी भी उसे छोड़कर जाती, अगर उसके मैके खुशहाल होते? सभी इन्सान जानवर हैं, जहाँ खाना देखा वहीं मुड़ गए।

सुबह उसकी आँखें जल रही थीं, पर वह उठा। मुँह धोया, कपड़े बदले और पानी का गिलास पीकर घर से बाहर निकला। उसमें चलने की शक्ति न थी, पर फिर भी चलता रहा। जब वह उस सुंदर बंगले के पास पहुँचा तब सूरज काफी चढ़ आया था। उस वक़्त सुबह के दस बजे थे। कुत्तों का भौंकना सुनकर नौकर बाहर निकल आया। लगा जैसे वह उसी वक़्त नींद से उठा था। उसे दालान में मेंजी पर बिठाकर अन्दर मालिक को बुलाने गया। लगभग आधे घंटे के बाद ठेकेदार बाहर आया। उसके होठों के बीच सिगरेट की बजाय चुरुट था और उसके मुँह से रात पी हुई शराब की गंध आ रही थी। उसका बदन भी कुछ भारी हो गया था।

ठेकेदार के चेहरे पर चौड़ी मुस्कान फैली और अभिमान का जज़्बा वहीं हाज़िर हुआ। उसे अपनी अहमियत का अहसास हुआ– इन्सान का सबसे प्यारा अहसास।

"तुम दोपहर के बाद मेरी ऑफिस में आना। इस समय मेरे पास सिर्फ़ चपरासी की जगह खाली है। छः आठ महीने में तुम्हारा ओहदा बदलकर तुम्हें तरक्की दी जाएगी।"

ठेकेदार ने एक कुत्ते को गोद में उठाया, उसे चूमते हुए भीतर चला गया।

अब वह हर रोज़ घर में दो जून खाना खाता है और ऑफ़िस में एक कप चाय पीता है। वह इसलिये ज़िन्दा है। वह अब वे सब काम करता है जो आम आदमी करते हैं। मिसाल के तौर कभी अनजाने में ठहाका लगा बैठना, औरों पर टीका–टिप्पणी करना, कभी पत्नी के साथ प्यार व लड़ाई वाली फ़िल्म भी देख आता है। कभी रात में पत्नी के साथ संभोग भी कर लेता है। कभी ख़ुद को अपने बच्चे का बाप भी समझता है।

ठेकेदार ने अपना अंजाम पूरा किया है। चपरासी से उसकी तरक़्क़ी करके उसे क्लर्क बनाया है। पर उसकी तनख्वाह वही चपरासी वाली ही है। पर अब उसे किसी के लिये भी शिकायत नहीं है। हाँ, एक तसल्ली है कि उसकी तरह मरे हुए इन्सान ज़िंदगी कैसे जीते हैं। चारों तरफ़ फैले हुए हैं ऐसे लोग, सच में यह दुनिया मरे हुए इन्सानों का ही घर है। बस कुछ उसकी तरह मर गए हैं, कुछ ठेकेदार की तरह। ❑

मज़बूत टाँका हुआ बटन

◆पोपटी हीरानंदाणी

मेरी भाग्यवान देखी है? हक़ीक़त में जैसे मिलिटरी का एक किरदार। उस दिन कहा था, "मुझे तुम्हारी यह बात बिलकुल अच्छी नहीं लगती।" मैंने कहा था- "मेरी कोई भी बात तुम्हें अच्छी लगी है क्या?"

तब कहती है- "तुम हो ही उल्टे तो फिर मैं क्या करूँ?"

अब मैं हो गया उल्टा और वह हुई सुल्टी। खट-पट भी तो इतनी है कि बस बात ही मत पूछो। ज़बान जैसे तेज़ धार वाली तलवार। मुझ जैसे छः फुट वाले को उसकी तीन इंची ज़बान लिटा देती है। दोस्त कहता है, "जिस घर में मधुर वार्तालाप करने वाली औरत न हो उसे जंगल में बस जाना चाहिए।" सच, भला जंगल इस मेरे घर से किसी भी हाल में बदतर न होगा? बराबर आग वन में भी लगती है। पर जब लगती है तो सब कुछ भस्म कर देती है न? यहाँ तो हरदम आग लगती रहती है। किसी न किसी कोने में आग के शोले उठते ही रहते हैं। इससे तो अगर घर छोड़कर निकल.... पर मैं निकलूँ तो क्यों निकलूँ? घर मेरा और मैं ही निकलूँ? क्यों न उसको ही निकाल दूँ? निकाल दूँ....? अपने बच्चों की माँ को निकाल दूँ? बच्चों का क्या होगा? घर का क्या होगा? लोग क्या कहेंगे? लोग!

लोगों को मारो गोली। ये ही तो थे जो कहते फिरते थे- "शादी क्यों नहीं करते?"

"मूमल का मुखड़ा कब दिखाओगे?"

"भगवती के शादी ब्याह के गीत कब गूँजेंगे?"

ये लो, मूमल ले आया, अब इस भाग्यवान सुराही के मुँह से जो यह ज़हर उगलता रहता है, वह मेरे सिवा दूसरा कौन निगलता है?

मैं भी अजीब आदमी हूँ। इस तोती ने अपनी चोंच से कोंचते-कोंचते मेरे पंखों को इतना सपाट और चिकना बना दिया है कि मेरे पास सालों के साल उसके साथ पिंजरे में रहने के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं बचा है। पर सोचता हूँ कि मैं उससे इतना क्यों डरता हूँ? औरत से डर रहा हूँ। ऑफ़िस में तो मैं कड़कती आवाज़ में बात करता हूँ। वह ज़रीन कपाड़िया मुझसे कितना कतराती है? ड्राफ्ट लिखते वक़्त उसके हाथ काँपते हैं। सब चपरासी मुझसे डरते रहते हैं। मैं भी कहता हूँ भले ही डरते रहें.... इस ऑफ़िस में मेरा प्रभुत्व बना रहे.... वैसे घर में तो वह मुझे धमकाती रहती है। सच तो यह है कि उँगली से उठाती है और उँगली से बिठाती है। मेरे आत्मविश्वास को कुचलकर रख दिया है। बच्चे कुछ पूछते हैं तो कहता हूँ- "जाकर माँ से पूछो।" उस दिन फत्तू ने जब कोर्स के बारे में पूछा, तब भी माँ से पूछने के लिये कहा तो कितना चकित हुआ? कह दिया- "डैडी! ममी को कॉलेज अध्ययन के बारे में क्या पता?"

मैं भी क्या करूँ? कभी कुछ कहता ही नहीं हूँ कि मिलिट्री का क़ायदा लागू हो जाता है। फ़ारसी के जानकार सच कहते हैं कि शादी की पहली रात ही बिल्ली मारनी चाहिए नहीं तो फिर बीवी सर पर नाच करने लगती है।

तौबा.... तौबा... ज़बान की कैंची इतनी तेज़ चलाती है कि मेरा वजूद ही टुकड़ों टुकड़ों में कटकर दर्जी के चिथड़ों की तरह हो जाता है। इससे तो शादी न करता!

पर भाई, शादी करने का तो मेरा भी दिल था। मैं समझा, औरत क्या होगी खांड की डली होगी। उसके नरगिसी चेहरे पर महकती शबनम होगी जिससे हर वक़्त आस-पास सुगंध आती रहेगी। वह बात करेगी तो गीत झड़ने लगेंगे और मैं सुध-बुध भुलाकर उस मधुरता में मदहोश हो जाऊँगा। मुझे क्या पता कि यह बला मेरे पल्ले पड़ जाएगी।

भला शादी की तो हर वक़्त उसे कहते रहते- "मेरी चाशिनी.... मेरी रोशनी.... मेरी बुलबुल..... मेरी सोहनी....." बिलकुल मुरीद बनकर उसके पीछे क्यों फिरता रहा?

सच.... उस वक़्त मुझे कितनी अच्छी लगती थी। पलकें झुकाकर तिरछी

नज़र से मेरी ओर देखती थी तो मेरे सारे शरीर में विद्युत प्रवाहित होती थी। उसका दुपट्टा कंधों से खिसककर नीचे सरक आता था तो मेरी तमन्नाएँ ऊपर उभर आतीं.... उसका हाथ पकड़ता था तो वह शरमाकर कहती थी.... 'छोड़ो ना, क्या कर रहे हो?' बस.... मेरे दिल की उमंगों की तरंगें एक दूसरे के ऊपर लहराती बलखाती रहतीं.... एक अनोखी ख़ुशी की झाग मेरे दिल के किनारे चले आया करती। गर्म और तेज़ अरमानों की चमक मेरे मन पर फैल जाती थी।

पर अमा यार, जब मैं जवान था जवानी के रंगों के सामने इन्द्रधनुष के रंग भी पछाड़ खा जाते। जोबन की उस अवस्था में कड़वी मिठास और मीठी कड़वाहट, मिलना और तड़पाती ख़ुशी और बिछड़ने में सोज़ भरा सुख, न जाने क्या क्या महसूस किया है!

तो क्या अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ? अभी तो सिर्फ़ चालीस पार किये हैं। परदेस में चालीस के बाद ही जवानी की ऋतु शुरू होती है। पर दोष भी तो मेरा ही है, तब इतनी खुशामद न करता तो आज इतना सिर घूमा हुआ न होता।

पर अब भी वक़्त है, अगर डंडा उठेगा तो भला होगा... च....च... क्या कह रहे हो? क्या करोगे आख़िर? क्या मारोगे उसे? बस इसी शराफ़त ने तो मार डाला है। अगर मुझ-सा कोई मर्द सामने होता तो उसके दाँत तोड़ देता, पर इस औरत जात के सामने....

पता नहीं ये औरतें ऐसी क्यों बनी हैं आख़िर? क्यों एक औरत में दो औरतें समाई हैं.... एक कोमल, दूसरी कठोर। एक फूल जैसी, दूसरी लोहे जैसी.... एक शीतल अग्नि और दूसरी जलता पानी.... ओह! दो विपरीत चीज़ें मिलेंगी तो ऐसा ही होगा।

हे मेरे भगवान! बड़ी समालोचना वाली नज़र होती है उनकी। उस दिन कह रही थी कि "चलो बांद्रा, मेरी मासी के पास।"

"अरे, मैं तुम्हारी मासी के पास चलकर क्या करूँगा?"

भला दो औरतें मिलती हैं तों बातें करती हैं फ़क़त अचार और पापड़ के बारे में, तक़रीरें करती हैं, भाजियों की मंहगाई पर और बहस करती हैं अनजाने लोगों की मंगनी और शादी की बातों पर।

मैंने कहा– "मैं बैठकर मैगज़िन पढ़ता हूँ।" तो मुँह फुलाकर बैठ गई है। हैफ़ है हमारी मर्दानगी पर और शर्मिंदगी होती है हमारे मर्द होने पर। बस, अगर औरत ने दो आँसू टपका दिये तो हमने अपनी दाढ़ी दे दी उनके हाथ में....!

कल बेचारा विश्नू आया था। छुटपन का दोस्त है, सहचर सखा। खाना खाकर निकल पड़े और जाकर अंधेरी में होतू के पास पहुँचे। पर अगर निकल गए तो क्या हुआ?

पर घर पहुँचे तो रात को दिन बनाकर रख दिया। बात का बतंगड़ हो गया। शादी की तो नल-दमयंती की तरह एक ही चादर में लिपटे से रहते। बस कहती है– "उस मुर्दार विश्नू से क्यों नहीं शादी कर ली?"

वह सुन्दर मेरी मासी का बेटा है। है पूरा घुमक्कड़, सचमुच पक्का बंडलबाज, पर कुछ भी कहो वह मन बहला जाता है। अगर थोड़ी व्हिस्की पीता है तो क्या हुआ? बोतल अगर पीता हूँ तो उसके मैके से तो नहीं ले आता?

पर सुंदर का कहना तो उसे अच्छा ही नहीं लगता। अरे, अगर मेरी पत्नी है तो क्या हुआ? तुम्हारा पति हूँ तो क्या किसी का बिरादर, यार-दोस्त नहीं हुआ क्या? माँ और बहन को तो सहती ही नहीं, चाहे वे कितनी भी इससे अच्छी लय ताल में व्यवहार करें। यह बस उनकी कमियों और कमज़ोरियों की ओर ही नज़र धरेगी। उसका पति होने के नाते क्या सिर्फ़ उसकी ही जागीर बन गया? खुद भले ही हज़ारों खर्च करके साड़ियाँ ले ले, पर मजाल है कि बहन के लिये कभी भूले से भी सौ डेढ़ की कोई चीज़ ख़रीदे। मेरी माँ को भी अगर कुछ देती है तो लेखा जोखा सुनाकर, दाम को दस गुना बढ़ाकर, फिर भी जैसे उस पर बहुत मेहरबानी करते हुए। पैसे मेरे और मेहरबानी उसकी। ज़ुल्म है! बैल की तरह पसीना बहाकर पैसे हम कमाएँ और वे उस कमाई के पैसे की मुफ़्त में मालकिन बनती हैं। अजीब माजरा है।

सिर्फ़ मालकिन बनें तो ग़नीमत, पर मेरे समस्त हस्ती के हक़ वास्ते जैसे उसे सौंपे हुए हैं। मेरे समय पर और मेरे पैसे पर, मेरे आने पर और मेरे जाने पर, मेरे उठने बैठने और बातचीत पर भी उसका हक़ है।

वह लीला है न? मोती की पत्नी, उसका तौर-तरीक़ा, चाल-ढाल कितना

मधुर व मनमोहक है। बातचीत भी मेरी गोपी की तरह नहीं है। बात करती है, तो लगता है जैसे सुबह की हवा सैर को निकली हो। दो घड़ी जाकर उसके घर बैठो तो लगता है घुटन भरे कमरे से निकल कर किसी नीम के पेड़ की छाँव तले बैठा हूँ। कभी तो उसकी काट खाने वाली बातों से भागकर उनके पास जा बैठता था तो ऐसे लगता था जैसे अष्टमी की रात चाँद और तारों के नीचे किसी की मधुर बाँसुरी सुन रहा हूँ।

पर उसे मेरी ख़ुशी क्यों रास आती? सच में परेशान कर दिया है। अभी चप्पल पहन कर दरवाज़े की तरफ़ जाऊँ तो सवालों से हमला शुरू कर देती है– "कहाँ जा रहे हो? मोती के घर में क्या मिलता है? इससे बेहतर है घर में बैठकर आराम करो।"

दिल कहता था कि कह दूँ– "मेरी हर बात में हस्तक्षेप क्यों करती हो? आराम जाने और मैं जानूँ, तुम क्यों बीच में परेशान होती हो?"

वह घूरती इस तरह थी जैसे ज़हर भरा तीर फेंक रही हो। आख़िर तो मैं भी आदमी हूँ कोई कीड़ा–मकोड़ा नहीं? अरे उस ईश्वर ने भी एक कहानी लिखी थी– 'मरा हुआ मकोड़ा'। पर मैं वह मकोड़ा बनूँ? बेग़ैरत मर्द बनूँ? यह तो होना ही नहीं है। गर्दन मरोड़ दूँगा.... मरोड़ कर फेंक दूँगा।

पर भैये, ये है सच, बचपन में रिकार्ड प्लेयर पर सुना था:

घोट चढ़हयो घोड़ीअ ते नास पितो बोड़े
सवा घड़ीअ वास्ते सजी उम्र थो लोड़े।

(मतलब : दूल्हा चढ़ा घोड़ी पे, सब कुछ दाँव पर लगाकर, सवा घड़ी के वास्ते उम्र भर भोगता है।)

बस खांड पर जमा कीड़े मकोड़े जैसी हालत है हम मर्दों की। अरे शायद धोबी बन गया हूँ। सोच रहा हूँ.... कुर्ता निकाल कर पहन लेता हूँ. ... मुश्किल से जाकर इतवार मिलता है.... आज लेट जाता हूँ....!

अरे पर इसका बटन तो टूट गया है.... कहता हूँ कि टाँक दे.... नहीं नहीं रहने दो बिचारी को.... भले आज़ादी का आनंद लेने दो.... नहीं तो ऐसा मजबूत टाँकेगी कि क्या कहूँ.... छेद से सुई पार करके चारों ओर धागा लपेटकर. ...सुई आर–पार.... धागा चारों ओर....

"अरे लेट क्यों गए हो? भाभी के पास चलना है। जल्द ही तैयार होकर

आओ, नहीं तो कहोगे धूप में लेकर चली थी इसलिये सर में दर्द हो गया है...."

"आज छोड़ दो, तुम भाभी के पास होकर आओ। मैं बैठ जा...."

"नहीं....नहीं.... ऐसे कैसे होगा? सब के साथ थोड़े ही रिश्ता तोड़ दोगे.... उठो... कमीज़ पहनो...." ❑

बीमार आकांक्षाओं की खोज

◆मुश्ताक़ अहमद शोरो

क्या ये सब जिल्लते, यंत्रणाएँ, अपमान, मानसिक यातनाएँ, अनाड़ीपन, महत्वहीनता के नगण्य भाव मेरे हिस्से में आने वाले थे? दोष भी किसे दें, मेरी ऐसी दयनीय दशा के लिए! वैसे तो मैं अपनी छोटी-छोटी ख्वाहिशों, उम्मीदों, नाकामियों, निराशाओं और नाउम्मीदों में ज़िन्दा था, जीता रहा ऐसे ही, पर यह अहसास? शायद मेरे चेहरे की तरह, मेरी रूह, मेरे वजूद और सोच में भी सिलवटें पड़ गई हैं या शायद मैं ग़लत मौक़े, ग़लत वक़्त और ग़लत जगह पर पैदा हुआ हूँ या मौजूद हूँ।

पर यह कोई ख़ास नई या हैरान करने वाली बात तो नहीं है। मैं जो कुछ भी सोचता हूँ, वह कह नहीं सकता। ये तो शुरू से ही था। और उसके सवालों के जवाब, उन की सोच विचार और राय पर जवाब, और उन जवाबों की दलीलें बाद में ही दिमाग़ में आती हैं। "ऐसे जवाब देता तो यह दलील देता।" सामने बात करते तो जैसे साँप सूँघ जाता है। होश गुम हो जाते हैं। कुछ भी समझ में नहीं आता कि क्या कहूँ, कौन सा जवाब दूँ?

मेरे लिये लोगों का धिक्कार, नफ़रत, नज़रअंदाज़ी और अहमियत न देने का कारण तो मान लें, मेरा अनाड़ीपन और पागलपन ही हो। पर मेरे साथ ऐसा क्यों है? कोई कितनी भी बेइज़्ज़ती करे, ज़लील करे, ठिठोली करे, ताने मारे, पर बदले में देने के लिये मेरा पास कुछ भी नहीं। पहले तो मन ही मन में उस आदमी को अपने हाथों ज़लील ओर अपमानित करने की फिल्म बार बार चलाता था, पर अब ज़िन्दगी के उस पायदान पर कौन बैठकर लेखा-जोखा करे। बचा ही क्या है अब, हिसाब किताब के लिये! शोलों की प्रतीक्षा की पीड़ा, संताप व यातना जो मौत की सज़ा क़रार क़ैदी अपनी जिन्दगी की आख़िरी रात महसूस करता है, इसे इस क़ैदी से ज़्यादा और कौन कैसे

जान, समझ, महसूस कर सकता है?

मैं जो अपने वजूद के पहले दिन से अंधेरों में भटकता, खिसकता, ठोकरें खाता साफ़-शफ़ाक़, उजली रोशनी और उजाले की खोज करता रहा, मिला क्या? अंधकूप, प्रकाशरहित काली रातें मुक़द्दर बनती रहीं। मुक़द्दर, तक़दीर, भाग्य पता नहीं क्या है!

पर सच में अजीब दस्तूर है कि एक जैसी ही परिस्थितियों में, एक जैसे अवसर पाने पर भी कोई जीत जाता है, कोई हार बैठता है। कोई बच जाता है तो कोई ज़िन्दगी से हाथ धो बैठता है। एक ही बस के हादसे में कोई मर जाता है तो किसी को खरोंच भी नहीं आती। और मैं जिस किसी काम में हाथ डालता हूँ तो बस गड़बड़ पैदा करने का सबब बन जाता हूँ। सीधा-सरल काम तो मुझसे कभी हुआ ही नहीं है। मेरा वजूद ही एक 'क्रिमिनल जोक' है।

क्रिमिनल!.... क्राइम.... क्या है क्राइम? क्रिमिनल अपराधी बनना आदमी का अपना चुनाव तो नहीं। इन्सान तो बिलकुल ख़ाली और कोरा है। उसके पास देने के लिये अपना कुछ भी नहीं है। वह तो सिर्फ़ समाज को वही लौटाकर देता है, जो समाज उसे देता है। और यही समाज! इस समाज के पास तो क्रिमिनल अपराधी, अशक्त मरीज़ या पागल पैदा करने के सिवा है भी क्या? यह रचना एक बड़ा कारख़ाना है, गुनहगार और दुर्बल मरीज़ पैदा करने का। अपनी पैदाइश के लिये सज़ाएं भी समाज खुद ही तय कर बैठा है।

ज़िन्दगी मैं नहीं गुज़ार रहा, ज़िंदगी ही मुझे धीरे-धीरे जी रही है। कभी न कम होने वाली यातनाओं में, ना उम्मीदों और मायूसियों के कभी न ख़त्म होने वाले सिलसिले में। ज़िन्दगी के हाथों मैंने हर क़दम पर, हर मोड़ पर मार खाई है और मेरे हिस्से में अपने ही ज़ख्मों को चाटने के सिवा आया ही क्या है?

आगे क्या होगा? भले कुछ भी हो पर बेहतरी की उम्मीद बेवकूफ़ी है। कभी-कभी धोखे और नखलिस्तान भी बेहतर होते हैं। कुछ वक़्त के लिये आदमी में जीने की तमन्ना तो पैदा हो जाती है।

जब वह ज़िंदगी में आई तो मैं समझ बैठा, कि कुछ भी हो वह मेरे लिये किसी घने दरख़्त की छाँव है। मैंने सोचा, उस पेड़ के तने के सहारे

उसके सांवली घटाओं जैसे बालों में मुँह छुपाकर, बाक़ी की बची ज़िन्दगी गुज़ार लूँगा– कुछ भी सोचे बिना उन दुखों, उन यातनाओं, उन बेग़ैरत व्यवहारों और ज़िल्लतों को बाजू रखकर। पर वह छायादार था, टिक न पाया।

ख़्वाहिशों और आशाओं की भीड़ में रौंदते, कुचलते हुए भी, उस भीड़ से अलग रह पाना कितना कठिन है, अपने बदसूरत पाजीपन और मामूली वजूद को भुलाकर। चाहा मैंने भी था कि कोई हो जो टूटकर मुझे चाहे, किसी और के नाम से जुड़ी हुई न हो। सिर्फ़ और सिर्फ़ मेरे लिये हो और उसकी आँखों में सिर्फ़ मैं ही समाया रहूँ। उसकी आँखें भी उसकी तरह कुँवारी हों, और मैंने अपने सपनों को उसके रूप में वास्तविक रूप धारण करते हुए पाया।

उसने कहा–

"उसका पहला प्यार कोई था, जो उसे छोड़कर चला गया। इसीलिए वह अपने आप में खोई रहती है। वैसे भी औरत को प्यार से ज़्यादा सामाजिक शिनाख़्त की ज़रूरत होती है। वह तो सिर्फ़ शादी के चक्कर में है। उसका दिल, सोचें, ख़्याल बंटे हुए हैं। वह टुकड़ों टुकड़ों में जीती है।

लफ़्ज़ न थे, बम के धमाके थे। मेरे पाँवों तले से ज़मीन खिसक गई और मैं ख़ुद को ज़मीन और आसमान के बीच में लटका हुआ महसूस करने लगा। ये सदमें भाग्य हैं। दुख फिर भी हुआ, पीड़ा और तकलीफ़ का कारण तो इतना महत्वपूर्ण भी नहीं था, फिर भी जाने क्यों? पता नहीं मैंने अवकाश क्यों लिया– सुकून पाने से ज़्यादा यातना और मानसिक संताप यूँ घेर लेते हैं, जैसे मधुमक्खी के छत्ते में हस्तक्षेप करने से मधुमक्खियाँ घेर लें। दोष उसका नहीं था, हस्तक्षेप मैंने ही किया था।

उसने कहा– "एक बात कहूँ?"

मैं चुप!

मेरी किसी प्रतिक्रिया के बिना उसने कहा– "शादी औरत के लिये बीमा–पालिसी है, जिसका प्रीमियम वह सेक्स की सूरत में अदा करती है।"

मैंने ही कहा था उस बात के भद्देपन को बहलाने के लिये– "नहीं, ऐसा बात भी नहीं है, औरत का बच्चों में भी तो मोह होता है, वह भी तो असामान्य है....!"

अब और कुछ तो याद नहीं, बस इसी तरह कुछ बकता रहा यह साबित

करने के लिये कि सब कुछ नार्मल है। कुछ भी अचानक और सदमे जैसा नहीं है, सब ठीक है, ऐसा ही जैसा था।

चौराहे पर मेरा खड़ा होना स्वाभाविक है, जब मंज़िल का अता पता न हो। मेरा पीड़ादायक सफ़र तो जन्म से शुरू हुआ है, मरने पर ख़त्म होगा। मौत भी जाने कैसे और किस हालत में आएगी। वह भी दर्दनाक ही होगी. ... शायद, नहीं.... निश्चित ही भयानक होगी।

सज़ाएँ तो काट रहा हूँ। 'सेसफस' को सज़ा दी गई थी कि वह भारी पत्थर कंधे पर उठाकर पहाड़ की चोटी पर चढ़े और जब वहाँ पहुँचे तो पत्थर हाथ से छूटकर फिर पहाड़ की तलहटी पर आ जाये और वह उस निष्फल कार्य पर हर वक़्त अफ़सोस करता रहे- बेमक़सद परिश्रम की सज़ा, सेसफस की तरह मुझे भी न जीतने का संताप एवं बिना किसी मंज़िल के सफ़र करने की सज़ा मिली हुई है। मेरी रूह की दर्दनाक चीखें गूँगे बहरे कानों तक नहीं पहुँच सकतीं, सब बेकार है।

यह रात की उन अनेक अद्वितीय रातों में से है, जिसमें रातों की नींद उड़ जाती है और उसकी जगह अनिद्रा ले लेती है। अक्सर ऐसा होता है, नींद भी रूठे हुए महबूब की तरह होती है, ज़िद्दी, कठोर, मिन्नतें न मानने वाली। जागरण आँखों में यूँ बस जाता है जैसे खाली वीरान और उजड़ी जगहों पर भूत-प्रेत अपना निवास कर बैठते है। अब होगा यूँ कि सूरज निकलने के बाद ऊँघता सा, बेहाल होकर बेहोशी की हालत में आज का सारा दिन और कल भी बेकार चला जाएगा। कोई काम-धाम करने की कोई सुध-बुध न रहेगी। यह ऐसा ही होता रहा है। पर करने के लिये ऐसा कुछ है भी तो नहीं!

अब इस ज़िन्दगी के लिये बैठकर क्यों सोचा जाए, कौन सा आराम और सुकून मिला है और फिर ज़िन्दगी कौन से निर्बाध ढंग से गुज़री है। यह जीवन तो क्या-क्यों के सवालों में ही बीत गया। शराब क्यों पीते हो? गंदी वेश्याओं के पास क्यों जाते हो? ऐसे क्यों हो? वैसे क्यों हो तुम? पर कभी किसी ने यह नहीं पूछा कि तुम ज़िंदा किसलिए हो? मर क्यों नहीं जाते?

कोई भी मेरे अंदर झाँककर मुझमें छुपा हुआ, डरा हुआ मासूम बच्चा न देख पाया है, न पहचान पाया है! मेरे सख़्त चेहरे और व्यवहार के पीछे

छुपे हुए कमज़ोर दुर्बल शख़्स को तो वह भी नहीं देख पाई। हमेशा मुझे पत्थर दिल ही कहती रही। ज़िंदगी के ज़ख़्मों की ख़लिश को उसने महसूस नहीं किया, जो मुझसे जुड़ी थी।

उसने कहा–"तुम्हारे रवैये में भी निराशा है, तुम हमेशा निगेटिव सोचते हो। 'पोज़िटिव' रवैया तो तुम्हारे पास में भी नहीं गुज़रता।"

मैंने कब कहा और सोचा है कि जीवन का फ़क़त एक ही पहलू है। मैं तो सिर्फ़ उस ज़िन्दगी की बात कर रहा हूँ जो मेरे हिस्से में आई। वर्ना सुबह की उज्जवल किरणों में जीने की आशा किसे नहीं होती। हर इन्सान ख़ुशी चाहता है और दुख से छुटकारों की चाह रखता है। पर क्या यह मुमकिन है? इन्सान के नियंत्रण में है? सब कुछ ऐसा ही है?

अब लगता है ज़िन्दगी का समस्त लेखा–जोखा हो चुका है। एक तरफ़ा ही सही, इस जीवन में नफ़े–नुक़सान की तकरार में बैठ कर कौन रोए? लावारिस सवालों का जवाब हासिल होने वाला नहीं, ऐसे जैसे धिक्कारे हुए अहसास दिवालिये और कंगाल मुहब्बत के बदले में नहीं मिलते हैं।

मैं चाहे कुछ भी कर लूँ पर यह तय है और यही मेरी अलिखित सज़ा है, जिसमें मेरा सारा वजूद एक ऐसी लगन और परिश्रम में लगा हुआ है, जिसमें से कुछ हासिल होना नहीं है। कोई भी नतीजा निकलने वाला नहीं।

फ्रांस के क़ौमी दिवस पर फ्रेंच एम्बेसी के राजदूत को निवास स्थान के एक चौड़े विशाल लॉन पर मिली एक दावत में, मैं व्हिस्की का एक पेग हाथ में लिये लॉन के एक ख़ाली कोने में सबसे अलग बैठा हुआ था, तो वह मेरी ओर बढ़कर आई, न जाने क्या सोचकर या शायद किसी ग़लतफ़हमी की तरह। इससे पहले तो ऐसा कभी हुआ न था।

"हेलो, कुछ अपने बारे में भी तो बताओ?"

वह कुछ आश्चर्य में थी।

"मैं.... बस एक आम आदमी हूँ– ऊँ....हाँ, ख़ूबियों की गणना में ख़ामियाँ शायद मुझमें बहुत हैं! शायद इसीलिये अपने बारे में कुछ ठीक से कहा नहीं जाता। अपने बारे में निर्णय सही नहीं होता। जीवन में नाकामियाँ बहुत हैं, कामयाबिया नहीं के बराबर। उपलब्धियों की तुलना में विफलताएँ ही विफलताएँ हैं। मेरे साथ ऐसी कोई भी बात जुड़ी हुई नहीं है, जो मुझे औरों से अलग पहचान दे। ज़िंदगी में कोई भी उपलब्धि नहीं। बस यूँ समझ लो कि इस

धरती पर छः अरबों की आबादी में मैं भी एक हूँ, ऐसे ही आम! और तो कुछ महत्वपूर्ण नहीं सुनाने जैसा।

"तुम तो शर्मीले हो और अपने आप में खोए हुए हो!"

"मुझे मालूम नहीं पर मैं डर से बावस्ता हूँ।" (I am paralysed with fear.) चौबीस घंटे ही डर में जीता हूँ, कुछ अनजाना सा डर, अंधेरे का डर और...."

"कभी इस बात पर गौ़र किया है कि तुम्हारी समस्या क्या है? तुम ऐसे क्यों हो, निराश-मायूस?"

"सोचा तो कई बार है पर मालूम नहीं.... मुझे लगता है कि मेरे जीवन में कुछ न्यूनता है और अपनेपन का अभाव मैं सदा महसूस करता रहा हूँ। (Well, I guess I am oppressed by a felling of some thing missing in my life, intensely suffering from a lack of intimacy.) इसके सिवा मुझे पता नहीं, कुछ और भी हो! मेरी समझ के बाहर है।"

"सच क्या है?

"सच वो है जिसकी हमेशा तलाश रही है, पर कभी मिला नहीं है। किसी को भी नहीं, गौतम बुद्ध को भी नहीं...!"

वह कुछ देर चुप मेरे मुँह को तकती रही और फिर बिना कुछ कहे, अपनी पहचान दिए बिना, आहिस्ता आहिस्ता चलती हुई भीड़ का हिस्सा बन गई और मैं वहीं अकेला ही बैठा रहा।

अकेला तो सारी उम्र रहा हूँ। किसी को अपना बनाना भी तो मुझे नहीं आया है। ता-उम्र अकेले रहते रहते अब हालत ऐसी हुई है कि कोई अपने आप मेरी तरफ बढ़ने की कोशिश करता भी है तो मैं खुद दूर भाग जाता हूँ। शायद डर से, शायद बेयक़ीनी में, या शायद बेऐतबारी में। पर मुझमें कुछ ऐसा है भी नहीं कि कोई मेरे साथ सारी उम्र बिता सके। मूढ़ और अनाड़ी तो हूँ ही।

अब शायद वक़्त भी नहीं है मेरे पास रिश्ते-नाते जोड़ने का, और न ही साहस। शायद वक़्त और साहस दोनों मेरे पास नहीं। शायद....!

अब तो लगता है ज़िन्दगी से लड़ने के लिये मेरे पास कोई हथियार ही नहीं बचा है। ❑

जिन्दग़ी और टेबल-टॉक

◆शरजील

"लगातार तीन सालों से तुमने कुछ भी नहीं लिखा है। इतनी चुप्पी क्यों साध ली है? क्या तुम्हारा विश्वास अब ज़ात से भी निकल चुका है?"

उसने कुर्सी पर बैठे बैठे ही करवट ली और फिर दोनों हाथों की उँगलियाँ बालों में उलझाते हुए ऊपर की ओर अपनी आँखें उस पर टिकाईं फिर नीचे करते हुए कहा– "मैंने लिखना नहीं छोड़ा है, वह छोड़ भी कैसे सकता हूँ?"

"मैंने तो बीते तीन सालों में तुम्हारी एक भी रचना नहीं पढ़ी। बहुत इन्तज़ार किया तुम्हारी लिखी हुई कृतियों को पढ़ने के लिये– पता नहीं तुमने कौन सी, और किसकी पत्रिकाओं के लिये लिखा है!"

"मैंने सिर्फ़ डायरियों में लिखा है– और वे ज़्यादातर मरने के बाद छपती हैं।"

"बीते तीन सालों में दुर्भाग्य की कोई भी क़यामत तुमसे कुछ भी नहीं लिखवा पाई, बड़ी हैरत की बात है।"

"क़यामतें अब हमारी ज़ात पर से गुज़रते अपना प्रभाव खो बैठी हैं।"

"तो फिर भीतर की दुनिया से निकलकर बाहर की दुनिया में क्यों नहीं आते?"

"बाहर की दुनिया!"

"हाँ, बाहर की दुनिया।"

उसने सिगरेट सुलगाया। क्षण के लिये सिगरेट को दो उँगलियों में फिराता रहा। आँखें टेबल के शीशे के नीचे पड़ी ऑफ़िस के स्टॉफ के साथ खिंची तस्वीर पर टिकी हुई थी। कुछ सोच रहा था या कोई जवाब नहीं जोड़ पा रहा था। फिर रिक्त आँखें उठाकर उसकी ओर निहारा था, जैसे कोई गुनाह करते हुए पकड़ा गया हो, या भागने के लिये रास्ता ढूँढ रहा हो। फिर गला

साफ़ करते हुए कहा– "बाहर की दुनिया बहुत कठिन है, बहुत छिट-पुट, विरोधाभास की शिकार बनी हुई। उसे समेटने के लिये आज से सात साल पहले अपनी कलम को अरब के पेट्रोल की तरह इस्तेमाल किया था और सीधा जेल चला गया था।"

"यह ख़बर मैंने अखबारों में पढ़ी थी। हाँ, फिर क्या हुआ?"

"कुछ भी नहीं, स्टूडैंट्स ने कॉलेज के अन्दर, बड़े-बड़े दरख्तों की चोटियों पर काले झंडे लगाए थे और सभी दीवारों पर चॉकिंग की थी। माँ-बाप ग़रीब थे, दूसरा कोई भी ज़मानत देने के लिये तैयार न था।"

"फिर लिखकर दिया होगा?"

"नहीं, गुनाह नहीं किया था।"

"तो फिर बाहर कैसे निकले?"

"स्टूडैंट्स ने आपस में चंदा इकट्ठा करके एक वकील किया था और ज़मानत भी उनमें से एक के पिता ने करवाई थी। आठ महीने सस्पेंड रहा। गुनाह साबित न हो पाने की सूरत में केस ख़ारिज किया गया।"

"और फिर तुमने बाहर की दुनिया के लिये लिखना छोड़ दिया।"

"नहीं, ऐसा नहीं है, हाँ इस तरह की जिरह से कतराता हूँ।"

"तुम्हें इस तरह की ज़हनी और जिस्मानी तकलीफ़ लेने के लिये पछतावे का अहसास तो नहीं हुआ है?"

"नहीं...."

"नौकरी कैसी चल रही है?"

"बस, ठीक है...."

"सुना था तुम्हें प्रमोशन मिलना था....?"

"हाँ, पर फिर स्कॉलरशिप के लिये एन.ओ.सी. (NOC) भी नहीं मिला और प्रमोशन भी रोका गया!"

"तुम्हें दुख तो हुआ होगा।"

"दुख हुआ था, दुख है.... वैसे भी आदमी जो कुछ सही समझ कर अपने ज़हन के साथ करता है, फिर आगे चलकर उन्हीं बातों और कामों को खुद ही रोकता है। पर मैंने कम से कम अपनी ऐसी किसी बात और अमल को आज तक ख़ारिज नहीं किया। फिर भी अगर उस अमल को क़ायम नहीं रख पाया हूँ, तो ऐसे हालातों से समझौता भी नहीं किया है।"

"अभी तक अकेले हो?"

"हाँ...."

"उसका क्या हुआ?

"किसका....?"

"जिस पर नॉवल लिखा था!"

"ज़हनी तौर पर नाबालिग़ और सामान्य सी साधारण सोच रखने वालों में से थी।"

"तो फिर नॉवल कैसे लिखा?"

"उसकी आर्दशवादी आँखों में हक़ीक़तों के दु:ख और सुख भरने के लिये।"

"उसने ऐसी बातों को महसूस किया था?"

"तभी तो फिर नहीं मिली है...."

"कितना समय हुआ है?"

"छ: महीने के क़रीब।"

"समझते हो कि वह आएगी?"

"हक़ीक़त कड़वी होती है। इसलिये आदर्शवादी आदमी भरोसे के क़ाबिल नहीं होते।"

"तुम भी तो अपनी उम्र में आदर्शवादी रहे हो.... समाज से लेकर जीवन साथी तक।"

"मैं इन्कार भी तो नहीं करता!"

"तो फिर यह भरोसा न लगने वाली तोहमत तुम पर भी लग सकती है!"

"ऐसी तोहेमतों की वजह से तो कुछ हासिल नहीं कर पाया हूँ।"

"तो फिर उस पर, क्या नाम बताया था....?"

"पिरह!"

"हाँ, फिर पिरह पर ऐसा दोष थोप देने का क्या सबब है?"

"दोष थोपने की बात नहीं है। फर्क़ सिर्फ़ सोचों के अलग अलग होने की वजह से ख़्वाहिशों का था। मिलकर रहना बेमतलब, एक दूसरे की हालातों और आदतों को बर्दाश्त करते हुए आहिस्ते आहिस्ते एक दूसरे के परित्याग के जज़्बे के अच्छे से और अच्छा बनाना होता है.... कुछ बातें ऐसी भी होती

हैं जो सामाजिक हैसियत और राष्ट्रीय चेतना के सिवा अधूरी और जटिल साबित होती हैं जैसे पिरह ने कौम की बुनियादी चेतना तो ध्यान में रखी, पर जीवन साथी के बारे में वर्गीकरण की शिकार हो गई। उसे राष्ट्रीयता और आज़ाद ख़याली के जज़्बे ने कितने ही अज़ीम अदीबों और शाइरों से मिलाया। उनमें से एक मैं हूँ।"

"वह तुम्हें कब मिली थी?"

"मैं समझता हूँ लगभग तीन साल पहले।"

"तुम्हें पहली मुलाक़ात में ही प्रभावित किया था उसने?"

"किसी हद तक!"

"फिर उस सिलसिले को तुमने बढ़ाया या उसने?"

"दोनों ने मिलकर। उसने पहला ख़त पहली मुलाक़ात के बाद तुरन्त ही लिखा और फिर बिना विलम्ब के इक दूजे को लिखते रहे, जिस में उसने तीन हैसियतों से सीढ़ी-दर-सीढ़ी क़दम बढ़ाए- पहला रज़ामंदी, फिर दोस्ती और फिर प्यार!"

"तुमने उस पर नॉवल कब लिखा?"

"तीसरे साल के मध्य में, जो उसे सालगिरह के मौक़े पर दिया।"

"तुमने उसे 'प्रपोज़' करके ग़लती तो नहीं की?"

"नहीं!"

"फिर इन्कार और छोड़ जाने का सबब?"

"उसने इन्कार नहीं किया था। बस! यही कहा कि मेरा एक दोस्त मुझसे इतनी मुहब्बत करता है कि वह कहता है कि अगर तुम किसी और से शादी करोगी तो मैं तुम दोनों को मारकर, ख़ुद को भी ख़त्म कर दूँगा।"

"और तुमने इसके उत्तर में कुछ भी न कहा होगा।"

"नहीं, बाक़ी उससे पहले दो तीन मुलाक़ातों में इतना ज़रूर कहा था कि तुम इतनी तो सुन्दर और लुभावनी हो कि तुम्हें भगा ले जाने को जी चाहता है।"

"ऐसी बात पर उसकी कोई ख़ास प्रतिक्रिया...?"

"वह सिर्फ़ आँखें मिलाकर मुस्करा देती थी।"

"तुम जैसे मर्दों को औरत के भीतर की मनोस्थिति की कभी भी जानकारी नहीं हो सकती। सिर्फ़ ख़ूबसूरत लफ़्ज़ जोड़कर गुफ़्तगू कर सकते हो।"

◆◆

वह फिर दूसरी बार अटक गया था, जैसे चलते चलते उसके सामने धरती दो भागों में बंट गई हो और वह दूसरी तरफ़ पहुँचने के लिये परेशान हो गया हो। उसकी उँगलियों में आधा बचा हुआ सिगरेट घूम रहा था, जो उसने मरोड़ कर ऐश-ट्रे में डाला ओर पैकेट से दूसरा सिगरेट निकाल कर सुलगाया और फिर कॉल-बेल पर उँगली रख दी। उसी वक़्त ऑफ़िस का दरवाज़ा खुला।

"जी हुज़ूर..."

"तुम क्या पियोगी?"

"जो तुम पिओगे।"

"बाबा, चाय तैयार कर लो।"

कुछ समय वह टेबल पर पड़े कागज़ों को पलटता रहा।

"सामी, वैसे तुम बहुत अच्छे आदमी हो, और प्यारे भी। मुझे तुम्हारी यह मासूमियत और 'अनाड़ीपन' वाली अदा अच्छी भी लगती है। पर तुम्हारी नीरस तन्हाई को देखकर दिल भी दुखता है। मैं समझती हूँ कि तुमने अनजाने में ही सही, पर पिरह को ज़रूर कोई दुख पहुँचाया होगा। नहीं तो तीन सालों वाला ऐसा रिश्ता किसी भी सूरत में बेकार या जड़हीन नहीं हो सकता!"

"शायद ऐसा ही है!"

"शायद नहीं, ईमान से कहो। कभी तो हार भी मान लिया करो। मैं भी तुम्हें अपनी ज़ात के हवाले से कुछ न कुछ समझ सकी हूँ। ऐसा क्यों करते हो? तन्हाइयों से अगर तुम इतना ही प्यार करते हो तो फिर दरवाज़ों को बंद क्यों नहीं कर लेते? ऐसे हर आने जाने वाले को दिल में जगह देकर फिर सुन्दर अल्फ़ाज से क्यों अलविदा कहते हो? कम से कम जो तुम्हें चाहते हैं, उनके साथ तो ऐसे मत किया करो। उन्हें तो अपने भीतर के किसी न किसी कोने में स्थान दे दिया करो!"

उसे राही के ऐसे जुमलों से, एक ही वक़्त में लगातार तमाचों की बरसात के साथ-साथ अपनेपन और हमदर्दी वाला भरपूर स्नेह भी मिला। उसकी झुकी हुई गर्दन फिर एक बार ऊपर उठी। राही की आँखों में आँखें टिकानी चाहीं। उस वक़्त राही की गर्दन झुकी हुई थी, वजह दुख! कुछ ही पलों के बाद

जब राही ने गर्दन ऊपर उठाई तो उसे उसकी आँखें नम सी लगीं।

"राही, इन्सानी ज़िंदगी के लिये क्या-क्या आवश्यक है- कभी न ख़त्म होने वाली एक लिस्ट है ख़्वाहिशों की, जो धरती से लेकर आसमान तक फैली हुई है। उस पर अगर मैं 'लॉजिक' से राय दूँगा तो तुम्हें दुख होगा। प्लीज़ राही। इन आँसुओं को यूँ व्यर्थ न करो, तुम्हारे पास अभी सबकुछ है। हर वह चीज़ जिसकी हर लड़की ख़्वाबों में ख़्वाहिश करती है। फिर पति भले बड़ी उम्र के हों, तो क्या हुआ? अगर औरत यह सब कुछ अपने आने वाले कल को सुरक्षित करने के लिये करती है, तो फिर प्यार से ख़ाली दिल को भी अगर चाहे तो सोने सिक्कों से भर दे। फिर क्यों उनकी आँखें ऐसे इन्सानों के सामने भर आती हैं जिनको वो छोड़कर चली जाती हैं?"

◆◆

उसने जैसे हिम्मत करके धरती के दोनों भागों को मिला दिया, पर उसे ऐसी बात राही के सामने करते हुए दुख के साथ खुदगर्ज़ी भी महसूस हुई। उसी पल खुद को संभालते हुए कहा- "राही, तुम्हें पिरह की तस्वीरें पसंद थीं न? सच, वह फोटोग्राफ्स से भी ज़्यादा आकर्षक और प्यारी है। मैं समझता हूँ कि वह ज़रूर आएगी। वैसे मैंने उसे कभी सुन्दर शब्दों में 'गुड बाई' नहीं कहा है। बस उसे एक ख़त लिखा था कि मैं भूतकाल को भूल जाने के क़ाबिल समझता हूँ और मुस्तक़बिल (भविष्य) जो देखा नहीं जा सकता, उसकी ओर उम्मीद भरी नज़रों से नहीं देखता। बाक़ी बचा वर्तमान, इसलिए जब चौबीस घंटों में अगर चार पाँच ठहाके लगाने को मिल जाते हैं तो ज़िन्दगी को जीने का सबब मिल जाता है। मैं समझ नहीं रहा, पर यक़ीन से कह सकता हूँ कि उसे ऐसे आदमी की तलाश न थी, जो वर्तमान से तो प्यार करता है, मगर आने वाले कल से नहीं, और शायद उसने खुद को घड़ी पल के लिये माज़ी समझा हो, जो मुझ जैसे आदमी के लिये भूल जाने के योग्य है।"

इतने में दरवाज़ा खुला। दरबान बाबा चाय लेकर आया। सामी चाय बना रहा था और राही उसके ख़ामोश और कुछ उदास चेहरे को देख रही थी। राही के सामने चाय रखते हुए उसने फिर से बात का सिलसिला जारी रखा।

"तुम्हें पता है कि जहाँ हम रहते हैं, वहाँ के साठ प्रतिशत लोगों का

ख़याल है कि यहाँ दौलत कमाने के लिये रिश्वत, घोटाले, तस्करी और ऐसे कई तरह के काम किये जाते हैं। आठ प्रतिशत जनता का ख़्याल है कि क़िस्मत भी आदमी को अमीर बनाती है। जब कि छः प्रतिशत का कहना है कि ऊँची तालीम से भी आदमी दौलत और इज़्ज़त कमा सकते हैं। तुम्हें पता है कि मैं मुहब्बत से लेकर समाजों और इन्कलाबों तक आदर्शवादी रहा हूँ। बाक़ी मेरे वर्तमान के लिये चाहत वाली बात पिरह ने शायद ग़लत समझी है। मैं इस बात से बिलकुल सहमत नहीं हूँ कि कोई इन्सान दुनिया को फ़ानी समझकर ज़िन्दगी की देन को जीने की तमन्ना से किनारा करे, सब कुछ त्याग दे। और ऐसा बिलकुल भी नहीं है। यहाँ बड़े शहरों में आधे से ज़्यादा आबादी किराये के मकानों में रहती है। और अगर पिरह किसी दो कमरों वाले किराये के मकान में रही तो क्या हो पाएगा? यहाँ कितने आदमियों और बच्चों के भविष्य सकुशल और सलामत हैं, कौन उनकी गारन्टी देगा?"

उसी वक़्त ऑफ़िस का दरवाज़ा खुला। दरबान ने सामी से कहा– "हुज़ूर, बाहर मैडम की गाड़ी आई है।"

ऐसा कहकर वह दरवाज़े के बाहर चला गया। राही ने सर ऊपर करके सामी की ओर देखा। उसे ऐसे लगा जैसे सामी किसी लम्बी दौड़ दौड़ते हुए आधे में ही थककर हार मान बैठा हो।

"अच्छा, मैं चलती हूँ!"

ऐसा कहकर उसने टेबल से पर्स उठाया और जाने के लिये खड़ी हुई। सामी चाहकर भी राही को बाहर तक छोड़ने नहीं गया। वह वहीं टेबल और कुर्सी के बीच में अटका सा खड़ा रहा। उसके कानों में काफ़ी देर तक 'ख़ुदा हाफ़िज़' के मंद होते हुए शब्द, उदास धुन की तरह बजते रहे। ❑

स्नेह का सावन

◆इमदाद हुसैनी

शॉन ने कुर्सी की पीठ पर लेटे, एड़ियों पर घेर देकर, कुर्सी को पिछली टाँगों पर खड़ा किया और फिर दीवार से टिकाने के लिए कुर्सी को पीछे की ओर धक्का दिया। संतुलन क़ायम न रहा और झटका खाकर कुर्सी ने उसे मेज़ पर ला पटका, जहाँ वह कुछ पल तो टेबल पर बाँहों को मुँह में दबाये ही पड़ा रहा।

'दीवार पीछे तो नहीं हट गई है?' उसने सोचा। कुहनी में जलन महसूस हुई तो कराहते हुए बाँह की ओर देखा। कुहनी में खरोंचें आई थीं और उनसे ख़ून निकलकर वहीं जम गया था। उस जगह मरहम लगाया, फूँक मारी, कमीज़ की बाँह नीचे की, फिर टेबल पर बाँहों के बीच मुँह रख दिया।

"हैलो!" शॉन के कानों में जलतरंग सी झनकार हुई। उसने गर्दन ऊपर उठाई। सामने लालन खड़ी थी। बरसाती वेशभूषा में, कंधों पर गरजते बादल लिए, लबों पर लाली लगाए। वह तो लालन के चेहरे पर टिकी आँखें ही उठा नहीं पा रहा था।

"देख तो ऐसे रहे हो जैसे पहली बार देख रहे हो।" लालन की मुस्कान ने गालों पर पड़े कपोलभंग को और गहरा कर दिया।

"पहली बार नहीं, आख़िरी बार!" वह भी मुस्कराया। एक रूठी हुई मुस्कान के साथ लालन को बैठने के लिए कहकर वह बाहर निकल गया। बाहर कमीज़ की बाँह से आँखें पोंछकर भीतर लौट आया।

"बाहर चलते हैं।" और वे बाहर निकलकर कार में आकर बैठे। कार स्टार्ट हुई और हैदराबाद के रास्तों पर दौड़ने लगी।

"कितनी पास हो और कितनी दूर हो।" शॉन ने जैसे अपने आप से बात

की। लालन ने अपना हाथ उसके हाथ पर धर दिया।

लालन, जो उसकी सब कुछ थी, और जैसे कुछ भी न थी! वह जो उसकी आदि और अंत थी, वह उससे आख़िरी बार मिल रही थी। वह हर रोज़ मिला करती थी– क्लास में– कॉरीडोर में– सीनेट हॉल में– सम्मेलनों में– मुशायरों में– जश्ने रूह रिहाण में– जलसों में– जुलूसों में– सिन्धू पर– हर जगह...! उससे मिलना तो मुहाल, आज के बाद तो वह उसे कभी देख भी न पाएगा। वह भीतर तक भीग गया था। बाहर बूँदें बरसने लगीं और विंड स्क्रीन पर जमा होकर रेला बनकर बरसने लगीं। फिर बड़ी बूँदें बरसने लगीं। शॉन ने वाइपर चलाये, हेड लाइट जला दी और लालन उनकी रोशनी में बूँदों की झिलमिलाहट देखने लगी।

"हमारे आँसू भी बादल रो रहा है।" शॉन ने ठहाका मारा जो ख़ुद उसे ही सिसकियों का आभास देता रहा। लालन ने उसके हाथ को होंठों तक लाया और उसे याद दिलाया– "आज हम रोने की कोई भी बात नहीं करेंगे।" शॉन ने ठंडी साँस ली और लालन के हाथ को हलके से दबाते हुए कार को जामशोरो की ओर मोड़ दिया।

'लालन' – सिर्फ शॉन ही इस नाम से उसे बुलाया करता था। लालन ने पहले ही उसे बता दिया था कि उनका साथ सिर्फ़ परीक्षाओं तक ही है। फिर जोगी किसी का रिश्तेदार नहीं! परीक्षाओं के बाद वह फिर से जिलों में जा बसेगी। नाते और शिक्षा के संबंध पर उनकी कई बार बात हुई थी, जीवन साथ बिताने की बात हुई पर....!

"नहीं, तमाम उम्र का साथ नहीं।" लालन ने कहा था।

"इस में शिक्षित होने की बात है भी, नहीं भी है।" सुनकर वह पल दो पल चुप रही।

"देखो शॉन, मैं एक ऐसे परिवार से आई हूँ, जिसमें लड़कियों की पढ़ाई पर प्रतिबंध है। ज़्यादा से ज़्यादा उन्हें क़ुरान की तालीम दी जाती है।"

"फिर क़ुरान उनकी झोली में डालकर, बख़्शाया जाता है!" शॉन ने कहा।

"मैं खानदान की पहली लड़की हूँ।" लालन ने सुना अनसुना करते हुए कहा, "जो यूनिवर्सिटी तक पहुँची हूँ। और मैं.... मैं उस डगर की आख़िरी लड़की बनना नहीं चाहती। उसके पीछे ख़ानदान की और भी लड़कियाँ हैं, जो तालीम की अलग-अलग दुश्वारियों का सामना कर रही थीं। उन्हें भी

यूनिवर्सिटी तक पहुँचाना है।" लालन ने अपने पिता को विश्वास दिलाया था कि वह उनके साथ कभी भी, कोई भी विश्वासघात नहीं करेगी।

"और प्यार के साथ विश्वासघात!" शॉन ने जैसे सिसकियों को लफ़्ज़ों में उँडेला था।

"ये लफ़्ज़ तुम्हारे मुँह से अच्छे नहीं लगते।" लालन ने उसके कंधे पर गर्दन टिकाते हुए कहा। "मैं तो तुम्हारे साथ बिताए दो सालों में पूरी ज़िंदगी गुज़ार चुकी।" लालन के इस तरह के सहज-सरल व्यहवार पर शॉन को अचरज होता था।

कार जामशोरो के पुल पर पहुँची तो लालन ने अपने पर्स से सिक्कों की मुट्ठी भरकर, कार की खिड़की का शीशा नीचे करते हुए झनझनाते सिक्के सिंधू की तरंगित लहरों की ओर फेंके। कार पुल पार करके अलमंज़र की ओर मुड़ गई। वे कार से उतरकर अलमंज़र पर जाकर बैठे। वहाँ की हवा लालन के बालों से शरारत कर रही थी। बरसाती बौछारें और सिंधू का शोर आपस में घुल-मिल से गए थे। लालन उठकर रेलिंग के पास जा खड़ी हुई, सिंधू की तरफ़ उसका चेहरा था। शॉन भी उसके पास में आकार खड़ा हुआ। दोनों बारिश में भीगने लगे।

"लालन!"

"हूँ...."

"जब जीवन में तुम ही न रहोगी, तो फिर मेरे पास जीने का कौन सा सबब होगा?"

लालन की हँसी जलतरंग की तरह गूँजी।

"यह तुम्हारी कहानी 'मरुस्थल में चीख़ हुई' का संवाद है न?"

"पर यह मेरे सवाल का जवाब तो नहीं।"

"जीने के लिए सबब हो यह ज़रूरी तो नहीं, ज़िन्दगी तो हमपर थोपी गई है और यह हमें हर हाल में दम गुज़र करनी है, पर...." लालन रेलिंग के पास से हटकर टेबल पर आकर बैठी। शॉन कुछ देर वहीं खड़ा रहा, निचला होंठ दाँतों के बीच दबाकर, वह लालन की ओर चला आया। वह चाय पी रही थी। शॉन ने भी चाय की चुसकियाँ लीं और फिर दोनों ने अपनी प्यालियाँ बदलीं।

"पर.... क्या?"

"पर...यह कि तुम्हारे पास जीने का सबब मौजूद है।"

"कौन सा?"

"लिखना....!"

"लिखना!" शॉन के होंठों पर निर्जीव मुस्कान तड़पने लगी। दिल में आया कि वह लालन को सुना दे कि अभी कल रात ही उसके पिता ने उसके नॉवल 'जो डगर पर मरते' का पहला अध्याय फाड़कर डस्टबिन में फेंक दिया था। शॉन ने अपने दायें हाथ की ओर देखा और फिर खुले हुए हाथ को मुट्ठी में बंद कर लिया। पिता चाहता था कि शॉन कारोबार में उसका हाथ बंटाए। पर शॉन कारोबारी आदमी न था, और वह यह बात अपने पिता को नहीं समझा पाया था।

लालन ने वॉच में देखा।

"क्या वक़्त ठहर नहीं सकता?" शॉन ने पूछा।

लालन के चेहरे पर मुस्कान खिल उठी।

"वॉच ठहर सकती है, पर वक़्त नहीं।"

शॉन ने बिल का भुगतान किया, और दोनों नीचे उतरकर कार में जा बैठे। कार शुरू होकर रास्तों पर भागती रही। लालन हेड लाइट की रोशनी में बूँदों की झिलमिलाहट देखने लगी। हैदराबाद पहुँचे तो बारिश बंद हो चुकी थी।

"बस, यहीं.... !" लालन ने कहा और शॉन ने कार रोक दी। लालन ने उसका हाथ अपने हाथ में लिया, उसे होंठों तक लाकर चूमा और आँखों पर रखा, फिर चूमा और बिना कुछ कहे कार का दरवाज़ा खोलकर उतर गई और शॉन उसे जाते हुए देखता रहा, जब तक वह नज़रों से ओझल न हुई। ❑

लेखक परिचय

◆डॉ. हिदायत प्रेम

जन्म : 24 मार्च 1946, घोटका, ज़िला- सिन्ध में। 1973 में सिन्ध यूनिवर्सिटी, जामशोरो में सिन्धी में एम.ए.। 1989 में लंदन से लसानियत में डिप्लोमा और 1995 में सिंध यूनिवर्सिटी, जामशोरों से पीएच.डी. हासिल की। इस वक्त सिंध यूनिवर्सिटी में सिंधी पढ़ाते हैं। उन्होंने अनेक कहानियाँ और शोधपरक लेख लिखे हैं। पता : सी-25, सिन्ध यूनिवर्सिटी कॉलोनी, जामशोरो।

◆अमर जलील

जन्म : 8 नवंबर, 1936 में हुआ। जिनका बचपन रोहड़ी व कराची में गुज़रा। नवाबशाह से बी.ए. करने के पश्चात् कराची यूनिवर्सिटी से एम. ए. की। वे रेडियो पाकिस्तान पर रिसर्च ऑफीसर भी रहे। 1954 में 'इंदिरा' नाम की कहानी लिखी, जो बहुचर्चित रही। उनके कहानी संग्रह हैं- 'दिल की दुनिया' और 'तीसरा वजूद' व नावल 'आख़िर गूँगी बोल पड़ी' प्रकाशित हैं। कुछ सिन्धी फ़िल्मों की कहानियाँ रेडियो और टेलिविज़न के लिए लिखी हैं। सिन्धी और अंग्रेज़ी में कई पत्रिकाओं में कॉलम लिखते रहे हैं। अब वे अलामा इक़बाल ओपन यूनिवर्सिटी, इस्लामाबाद से रिटायर हुए हैं। वे इस समय कराची में रहते हैं।

◆रशीदा हिजाब

जन्म : अक्टूबर 21, 1942 शिकारपुर , सिन्ध (पाकिस्तान) में। एम. एससी. एवं पीएच. डी. सिन्ध यूनीवर्सिटी, जाम शोरे से हासिल की। अमेरिका की Rutgers University से Post Doctorate हासिल की। लेक्चरार के तौर पर 'बोर्ड ऑफ इंटरमीडिएट एंड सेकेंडरी एजूकेशन' हैदराबाद में अध्यक्षा हैं।

बाल साहित्य, लेख, आलेख और लगभग 100 कहानियाँ पत्रिकाओं में छपी हैं। 1962 में बेहतरीन कहानी के लिये महराण अवार्ड और अनेक अकाडेमिक अवार्ड हासिल हैं। निवास : हैदराबाद सिन्ध।

◆तारिक़ आलम अबरो

जन्म 10 अप्रैल 1958 में कम्बर में लारकाणे में हुआ। 1962 में सिन्धी यूनीवर्सिटी से सिन्धी में एम.ए. की। उनका पहला कहानी संग्रह 'रात शांत और सोचें' और उनका नॉवल, 'रह गए वो मंजर' 1984 में प्रकाशित। इस नावल पर इंस्टीट्यूट ऑफ सिन्धीयोलॉजी की तरफ़ से उन्हें बेहतरीन अदब के अवार्ड से निवाज़ा गया। 1998 में उनका कहानी संग्रह 'पहचान की तलाश' प्रकाशित हुआ। इस वक़्त वह सिन्ध यूनीवर्सिटी कॉलोनी जामशोरो में रहते हैं।

◆सहर इमदाद

सहर इमदाद का असली नाम सहर बलोच है। पर इमदाद हसीनी के साथ शादी के बाद उसका नाम यही रहा।

जन्म : 20 जुलाई 1951, हैदराबाद में हुआ। एम.ए. सिन्धी में की है। रेडियो पर उनकी कहानियाँ, मज़मून, मक़ाले और कॉलम प्रकाशित होते रहे हैं। इस वक्त वह सिन्ध यूनीवर्सिटी, जामशोरो में सिन्धी की प्रोफेसर हैं। पता- बी-1, सिन्ध यूनिवर्सिटी कॉलोनी में रह रही हैं।

◆तनवीर जोनेजो

जन्म : 1952 में, ज़िला दादू में। उनकी तालीम भी वहीं हुई। 1974 में सिंध यूनिवर्सिटी जामशोरों से एम.ए. (Sociology) करके वहीं पर लैक्चरर के रूप में कार्यरत हुई। इस समय वे वहाँ की अध्यक्षा (Chair Person) हैं।

सातवें दशक में उन्होंने लिखना शुरू किया। उनका प्रकाशित कहानी-संग्रह है- 'अमृत में कड़वापन'। अनेक शोध लेख और मज़मून किताबों में छप चुके हैं।

वह इस वक़्त सिन्ध यूनिवर्सिटी एम्पलाइज़ को-ओपरेटिव सासाइटी, जामशेरों में रहती हैं।

◆नूर अलहदा शाह

जन्म : 24 जुलाई 1957 में हैदराबाद में जन्मी। शुरुआती तालीम लाहौर, इंटरमीडिएट लाहौर और फिर हैदराबाद से बी.ए. की डिग्री हासिल की। उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं- 'जलावतन', 'करबला' और 'रण में संज जो इतिहासु'। उनकी शाइरी का संग्रह- 'कैदियाणी की आँखें और चाँद" नाम से प्रकाशित हुआ है।

1982 से टी.वी. के लिए नाटक लिखे। उनका पहला ड्रामा सिन्धी में 'खिलौना' के नाम से मशहूर हुआ। कहानियों और ड्रामा निगारी के लिये अनगिनत अवार्ड मिल चुके हैं।

◆लियाक़त रिज़वी

जन्म : 1 मई 1963 नोशहरो फेरोज़ में। वहीं से मैट्रिक करने के पश्चात् सिन्ध यूनिवर्सिटी जामशोरो से एम. ए. करने के बाद इस वक़्त वे केडिट कॉलेज में लाइब्रेरियन हैं। अनेक कहानियाँ, मकाले व मज़मून लिखे। उनकी कहानी 'जनम शहर में विछोह ना पल' के लिये पहला इनाम मिला। 1994 में उन्हें 'बादाम ख़ातून' कहानी अवार्ड दिया गया।

इस वक़्त वे पी-25 केडिट कॉलेज, पेटारो में रहते हैं।

◆अब्दुल रहमान सियाल

हैदराबाद ज़िले में रहते हैं। सरकारी आफिसर के रूप में कार्यरत हैं। एक अच्छे कहानीकार के रूप में भी काफी मान्यता मिली है। कुछ संग्रहों में इनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।

◆कृष्ण खटवाणी

जन्म : वरुणशाह, सिन्ध (पाकिस्तान)। उपन्यास - 6, कहानी संग्रह- 9, कविता संग्रह- 2, नाटक- 1, अन्य 4 पुस्तके प्रकाशित। किसी भी ख़ास विचारधारा एवं लेबल से मुक्त। मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा सामी पुरस्कार (1981) और गौरव पुरस्कार (2006), भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता द्वारा

(1991) तथा 'याद हिक प्यार जी' उपन्यास पर साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित (2005)। रा.सि. बो. वि. परिषद् द्वारा साहित्यकार सम्मान (2005)

◆पोपटी हीरानंदाणी (18 सितम्बर 1924 - 2005)

जन्म : हैदराबाद सिन्ध (पाकिस्तान)। उनके साहित्य का विस्तार क्षितिज को छूता है। उनके चार कहानी संग्रह हैं- रंगीन ज़माने की गमगीन कहानियाँ (1953), पुकार (1953), कली गुलाब की, सागर शराब का (1967), मैंने तुमसे प्यार किया (1975) और ख़िज़ां का दौर पूरा हुआ (1976)। उपन्यास हैं- मंजू (1950), हसरतों का तरबत (1961) और सैलाब ज़िन्दगी का (1980)। अन्य आलोचना, लेख, शोधकार्य प्रकाशित। साहित्य अकादमी मुंबई द्वारा 1982 में सम्मानित। उनकी आत्मकथा 'मुहिजे हयातीअ जा सोना रूपा वर्क' पर महाराष्ट्र सरकार गौरव पुरस्कार, राष्ट्रीय सिन्धी बोली परिषद दिल्ली और कई पुरस्कारों से सम्मानित।

◆मुश्ताक़ अहमद शोरो

जन्म 10 मई 1952, जिला ठट्ठो में। 1973 में यूनिवर्सिटी से ग्रेजुएशन किया और 1977 में पोस्ट ग्रेजुएट की डिग्री हासिल की। हैदराबाद सिंध से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'आखाणी' के संपादक रहे। ज़िंदगी की शुरूआत रेडियो पत्रकार के रूप में की। अब वे विश्वविद्यालय में परामर्शदाता के रूप में कार्यरत हैं। उनके कहानी संग्रह- 'थके जज़्बों की मौत' (1975), 'टूटे-फूटे-उजड़ते अक्स' (2003) में प्रकाशित हुए हैं। पता : 166 ए, सिंध यूनिवर्सिटी, जामशोरो की कॉलोनी में आवास।

◆शरजील

जन्म 13 दिसंबर 1938, नवाबशाह जिले में। हैदराबाद में आर्ट टीचर के तौर पर स्थापित रहे। अब वे सेवा निवृत हुए हैं। 1970 में उन्होंने लिखना शुरू किया। उनका कहानी संग्रह 'पल पत्ते झड़ने के बाद!' और नज़्मों का संग्रह 'छोलियूं' प्रकाशित हुए हैं।

उनकी एक और पहचान चित्रकार के रूप में भी है। उन्होंने चित्रकार के रूप में अनेक पुस्तकों के कवर पृष्ठ और स्केच भी बनाए हैं। इस समय वे हैदराबाद ज़िला काउंसिल के फ्लैट नम्बर बी-2-1 में रह रहे हैं।

◆इमदाद हुसैनी

उनका असली नाम इमदाद अली शाह है। जन्म : 10 मार्च 1941, टंडो-मुहम्मद जान ज़िले, हैदराबाद में हुआ। शुरूवात में पढ़ाई गाँव में ली, बाद में गवर्नमेंट नूर मुहम्मद हाई स्कूल हैदराबाद में की, उसके बाद सिंध यूनीवर्सिटी से एम.ए. की डिग्री हासिल की। इमदाद हुसैनी का पहला शायरी-संग्रह 'इमदाद है रोल' 1976 में प्रकाशित हुआ। शायरी के साथ-साथ 'सांवल' के नाम से बहुत सारी कहानियाँ, निबंध और कॉलम लिखे। इसके अलावा उन्होंने रेडियो के लिए ड्रामा, गीतों भरी कहानियाँ और टी.वी. सीरियल भी लिखे। मिर्ज़ा गलीच बेग के नॉवल 'ज़ीनत' का उर्दू तर्जुमां भी प्रकाशित है। इस समय वे B-1 सिन्ध यूनिवर्सिटी कॉलोनी, जामशोरो में रहते हैं।

❑❑

नाम : देवी नागरानी

जन्म : 11 मई, 1941, कराची (तब भारत)

पति का नाम : भोजराज नागरानी, **माँ का नाम :** हरी लालवानी, **पिता का नाम :** किशिनचंद लालवानी।

शिक्षा : स्नातक। अर्ली चाइल्ड व गणित में डिप्लोमा, न्यूजर्सी से।

मातृभाषा : सिंधी। **सम्प्रति :** शिक्षिका, न्यू जर्सी, यू.एस.ए (अब रिटायर्ड)। **भाषाज्ञान :** हिन्दी, सिन्धी, गुरमुखी, उर्दू, तेलुगू, मराठी, अँग्रेज़ी।

प्रकाशित कृतियाँ : 1. ग़म में भीगी ख़ुशी (सिन्धी ग़ज़ल-संग्रह 2004), 2. चरागे-दिल (हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह, 2007), 3. उडुर-पखिअरा (सिन्धी-भजनावली, 2007), 4. आस की शम्अ (सिन्धी ग़ज़ल-संग्रह 2008), 5. दिल से दिल तक (हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह, 2008) 6. सिंध जी आँऊ आई आह्याँ (सिंधी-काव्य संग्रह, कराची से, 2009) 7. द जर्नी (अंग्रेज़ी काव्य-संग्रह 2009), 8. लौ दर्दे-दिल की (हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह, 2010), 9. भजन-महिमा (हिन्दी, 2011), 10. ग़ज़ल (सिन्धी ग़ज़ल-संग्रह, 2012), 11. और मैं बड़ी हो गयी (सिन्धी से हिन्दी में अनूदित कहानी संग्रह, 2012), 12. बारिश की दुआ (हिन्दी से अरबी सिन्धी में अनूदित कहानियाँ, 2012) 13. अपनी धरती (हिन्दी से अरबी सिन्धी में अनूदित कहानियाँ, 2013), 14. माई-बाप और कहानियाँ (सिन्धी से हिन्दी में अनूदित कहानी संग्रह, in progress), 15. सरहदों की कहानियाँ (सिन्धी से हिन्दी में अनूदित कहानी-संग्रह), 16. भाषाई सौंदर्य की पगडंडियाँ (सिन्धी से हिन्दी में अनूदित काव्य-पद, प्रेस में), 17. गुलाब की ख़ुशबू (सिन्धी से हिन्दी में अनूदित कहानी-संग्रह (प्रेस में) 18. यह ज़हर कोई तो पिएगा (सिन्धी से हिन्दी में अनूदित कहानी-संग्रह, प्रेस में)

भारत तथा यू.एस. की विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं से जुड़ी। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं (न्यूयार्क, ओसलो) द्वारा निमंत्रित एवं सम्मानित।

अनुवाद कार्य : सिन्धी भाषा की कहानियों का अनुवाद हिन्दी में और अन्य भाषाओं की रचनाओं का सिन्धी में अनुवाद। हिन्दी रचनाकारों की लघुकथाएँ व काव्य रचनाएँ सिन्धी देवनागरी में अनुवाद। रूमी, खलील जिब्रान व रवीन्द्रनाथ टैगोर की काव्य रचनाएँ अंग्रेज़ी से सिन्धी और हिन्दी में परस्पर अनूदित।

सम्मान : ◆अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, न्यूयार्क में, विद्या धाम संस्था, न्यूयार्क, शिक्षायतन संस्था न्यूयार्क की ओर से 'Eminent Poet' 'काव्य रतन' व 'काव्य मणि' सम्मान। ◆न्यू जर्सी, मेयर के हाथों City Hall mein 'Proclamation Award' ◆रायपुर में अंतर्राष्ट्रीय लघुकथा सम्मेलन में सृजन-श्री सम्मान, मुम्बई में काव्योत्सव, श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी, महाराष्ट्र हिंदी अकादमी, राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद की ओर से वर्ष 2009 में पुरस्कृत एवं सम्मानित ◆हिंदी प्रचार सभा द्वारा आयोजित कार्यक्रम में काव्य पाठ के उपरांत, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादेमी के कार्याध्यक्ष श्री नंदकिशोर नौटियाल एवं सभा की मानिंद निर्देशक डॉ. सुशीला गुप्ता के कर कमल से संस्था के नामी पदक व सुमन द्वारा सन्मानित 17 अप्रेल, 2008 ◆काव्योत्सव सम्मान, 2008 Bal Vikas Kendra Charitable Trust, Nerul द्वारा आयोजित गोष्ठी में संयोजक श्री अरविंद राही, अध्यक्ष श्री ब्रिगेडियर धर्मप्रकाश, श्री धनराज चौधरी, उपाध्यक्ष श्री पारस नाथ पांडे, अध्यक्ष श्रीमती साधना मिश्रा के हाथों से शाल, श्रीफल-पुष्प व सभा के काव्योत्सव पदक से सम्मानित, 27 अप्रेल 2008 ◆श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी द्वारा हिंदी दिवस की पूर्व संध्या पर आयोजित अखिल भारतीय सर्व-भाषा साहित्य सम्मेलन में भागीदारी के लिये सिंधी भाषा के लिये सरंक्षक व निर्देशक श्री अरविंद राही, श्री राजीव सारस्वत एवं श्री अनन्त श्रीमाली द्वारा सम्मान चिन्ह, श्रीफल, शाल, सुमन, 2008 ◆महाराष्ट्र हिंदी अकादमी के आयोजित सर्व 'भारतीय भाषा सम्मेलन' स्मारक सम्मान- साहित्य के योगदान व मुशायरे में शिरकत के लिए अकादमी की ओर से सम्मानित 3-5 अक्टूबर 2008 ◆ राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद -सिन्धी पुस्तक 'उडुर पखीयरा' के लिए पुरस्कार, 2009 ◆जोधपुर में 'खुशदिलान-ए-जोधपुर' के रजत जयंती समारोह एवं कवि सम्मेलन के अवसर पर स्मृति सभा भवन में आयोजक श्री अनिल अनवर द्वारा स्मृति चिन्ह, शाल सुमन से सम्मानित, 22 अगस्त, 2010 ◆ जयपुर में खुशदिलान-ए-जोधपुर के रजत जयंती समारोह में सम्मानित 22 अगस्त, 2010 ◆भारतीय-नार्वेजीय सूचना एवं सांस्कृतिक फोरम के मंच पर स्थानीय मेयर थूर स्ताइन विंगेर और भारतीय दूतावास के सचिव बी.के. श्रीराम जी एवं इस संस्था के अध्यक्ष सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक' जी के हाथों हिंदी साहित्य सेवा के लिए ओस्लो में सम्मानित, 17

मई 2011 ◆तुलसी साहित्य सम्मान- 2011, मध्य प्रदेश तुलसी साहित्य अकादेमी द्वारा, भोपाल ◆'जीवन ज्योति पुरस्कार', जीवन ज्योति संस्था की ओर से, भारत के 63 गणतंत्र दिवस पर मुंबई में, 26 जनवरी 2012 ◆विशेष सम्मान, संस्कृति संगम संस्था-कल्याण 13 अक्टूबर 2012 ◆'अखिल भारतीय सिन्धी समाज' का गोवा में 22वां राष्ट्रीय सम्मेलन में श्री लछमनदास केसवानी की हाजिरी में, मुख्य अतिथि युधिष्टर लाल जी हाथों विशिष्ट सम्मान सिन्धी-24-26, फरवरी 2012 ◆अखिल भारत सिंधी भाषा एवं साहित्य प्रचार सभा की ओर से लखनऊ में टेकचंद मस्त व बिनीता नागपाल द्वारा आयोजित 90 नेशनल सेमिनार स्त्री शक्ति पर, जिसमें शिरकत के लिए सखी साईं मोहनलाल साईं के हाथों सम्मानित, सिन्धी-15,16,17 मार्च 2012 ◆भारतीय भाषा संस्कृति संस्थान, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद के निर्देशक श्री के.के. भास्करन, प्रोफेसर निसार अंसारी, एवं डॉ. अंजना संधीर के हाथों- सुत माला, सुमन, शाल से सम्मानित, 18 जून, 2012 ◆साहित्य अकादेमी तथा रवीन्द्र भवन के संगठित तत्वावधान में शुक्रवार 2012, रवींद्र भवन मडगांव, गोवा में सर्वभाषी 'अस्मिता' कार्यक्रम में सिन्धी काव्य पाठ में भागीदारी, 9 नवम्बर 2012 ◆ तमिलनाडू हिन्दी अकादमी एवं धर्ममूर्ति राव बहादुर कलवल कणन चेट्टि हिन्दू कॉलेज, चेन्नई के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित विश्व हिन्दी दिवस एवं अकादमी के वर्षोत्सव में भागीदारी, अकादमी के अध्यक्ष डॉ. बालशौरी रेड्डी के हाथों 'साहित्य सेतु सम्मान, 10 जनवरी 2013 ◆संस्कार सारथी ट्रस्ट के तत्वावधान में 'अक्षर शिल्पी सम्मान' एवं लोकार्पण 'और मैं बड़ी हो गई' गांधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली 12 मार्च, 2013 ◆दिल्ली साहित्य अकादेमी द्वारा गणतन्त्र दिवस और सिन्धी के वरिष्ठ शायर हरी दिलगीर की याद में संयोजित संस्कृत व साहित्यिक काव्यगोष्ठी में भागीदारी, 20 जनवरी, 2013 ◆'सैयद अमीर अली मीर पुरस्कार- 2013, मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मंत्री संचालक श्री कैलाशनाथ पंत की हाजिरी में माननीय राज्यपाल श्री रामनरेश यादव के हाथों 'चरागे-दिल' के लिए, 2, अक्टूबर 2013

मेरी बात : कलम तो मात्र इक ज़रिया है, अपने अंदर की भावनाओं को मन की गहराइयों से सतह पर लाने का। इसे मैं रब की देन मानती हूँ, शायद इसलिये जब हमारे पास कोई नहीं होता है तो यह सहारा लिखने का एक साथी बनकर रहनुमाँ बन जाता है। लिखने का प्रयास शुरुवाती दौर मेरी मातृभाषा

सिन्धी में हुआ। दो ग़ज़ल संग्रह सिन्धी में प्रकाशित, कई आलेख, और समीक्षाएं लिखीं, फिर कदम खुद-ब-खुद राष्ट्रभाषा की ओर मुड़ गए, शायद विदेश (न्यू जर्सी) में रहते हुए साहित्य की धारा हिन्दी में प्रवाहित हुई और देश की जड़ों से जुड़ी यादें काव्य-रूप में कलम के प्रयासों से कागज़ पर उतरने लगीं। प्रवास में हिन्दी अकादेमी द्वारा कई संग्रह निकले जिनमें शामिल रही। प्रवासी परिवेश पर आधारित लेख, कहानियाँ और समीक्षात्मक आलेख लिखना एक प्रवृत्ति बन गयी। ग़ज़ल विधा मेरी प्रिय सहेली है, बस एक शेर में अपने मनोभाव को अभिव्यक्त करने का साधन और माध्यम। शिक्षिका होने का सही मतलब अब समझ पा रही हूँ, सिखाते हुए सीखने की संभावना का खुला आकाश सामने होता है, ज़िंदगी हर दिन एक नया बाब मेरे सामने खोलती है, चाहे-अनचाहे जिसे पढ़ना और जीना होता है, यही ज़िंदगी है, एक हक़ीक़त, एक ख़्वाब!!

यह ज़िंदगी लगी है हक़ीक़त, कभी तो ख़्वाब
वह सामने मेरे खुली, जैसे कोई किताब

संपर्क : 9- Corner View Society, 15/33 Road,
Bandra Mumbai 400050. Ph : 9987928358
USA Add : 408 W Surf Street, Elmhurst II 60126,
Phone : 1-630-841-2804
e-mail : dnangrani@gmail.com
URL ://charagedil.wordpress.com